निबन्ध-सूची

चित्र-सूची

भक्त-बालक

चन्द्रहास

प्रेमका विषया बन गया

चन्द्रहास

द्वापरयुगका इतिहास है। केरल-देशमें मेधावी नामक एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे, उनके एकमात्र पुत्रका नाम था चन्द्रहास। चन्द्रहासकी उम्र जब बहुत ही छोटी थी, तभी शत्रुओंने केरलपतिको युद्धमें मार डाला। चन्द्रहास-जननी पतिव्रता रानी सती हो गयी। राज्यपर दूसरोंने अधिकार कर लिया! इस विपत्तिकालमें चन्द्रहासकी धाय उसे लेकर चुपकेसे नगरसे निकल गयी और कुन्तलपुर जाकर रहने लगी। स्वामिभक्ता धायने तीन वर्षकी उम्रतक मिहनत-मजदूरी करके चन्द्रहासका पुत्रवत् पालन किया, तदनन्तर वह भी कालका ग्रास बन गयी।

चन्द्रहास अनाथ और निराश्रय हो गया, परन्तु अनाथ-नाथ भगवान् निराधारका आधार है। वह विश्वम्भर सबका पेट भरता है। भगवत्-कृपावश चन्द्रहासका पालन नगरकी स्त्रियोंद्वारा होने लगा। उसके मनोहर मुखमण्डलने सबके मन हर लिये। जो स्त्री उसे देखती, वही उसे पुत्रवत् प्यार करती, खिलाती-

पिलाती और पहननेको वस्त्र देती। एक दिन देवर्षि नारद घूमते-घामते उधर आ निकले। बालकको योग्य अधिकारी जान उसे एक श्रीशालग्रामजीकी मूर्त्ति और 'रामनाम' मन्त्र दे गये। शुद्ध-हृदय शिशु बड़े प्रेमसे मूर्त्तिकी पूजा और हरिनाम-कीर्तन करने लगा। शिशु अवस्था, सुन्दर वदन, सुहावनी सरस वाणी और श्रीहरिनाम-गान सभी साज मनहरण करनेवाले थे। इससे चन्द्रहासको जो देखता, वही मुग्ध हो जाता! वह इसी अवस्थामें परम धार्मिक और अनन्य हरिभक्त हो गया। जब वह अपने शरीरकी सुधि भूलकर मधुर तानसे हरिनाम-गान करता, तब उसके चारों ओर एक दिव्य चाँदनी छिटक जाती। उस समय चन्द्रहास देखता मानो एक जन-मन-मोहन श्यामवदन बालक मुरली हाथमें लिये उसीके साथ नाच और गा रहा है। उसके प्राणमोहन सुरोंको सुनकर चन्द्रहासकी तन्मयता और भी बढ़ जाती।

× × × ×

कुन्तलपुरके राजा बड़े पुण्यात्मा थे, परन्तु उनके कोई पुत्र न था। केवल एक रूप-गुणवती कन्या थी, जिसका नाम था चम्पकमालिनी। राजगुरु महर्षि गालवके उपदेशानुसार राजा अपना सारा समय केवल भजन-स्मरण-सत्संगमें ही लगाते थे। राज्यका सम्पूर्ण कार्यभार धृष्टबुद्धि नामक मन्त्रीपर था। कुन्तलपुरका राज्य एक तरहसे वह मन्त्री ही करता था। उसके अलग भी

बड़ी जमींदारी थी, धन-सम्पत्तिका पार नहीं था। धृष्टबुद्धिके मदन और अमल नामक दो सुयोग्य पुत्र और विषया नामकी एक सुन्दरी कन्या थी। मदन और अमल राजकार्यमें पिताकी यथेष्ट सहायता करते। इनमें मदन श्रीकृष्णभक्त और उदारचरित था, जिससे मन्त्रीके महलोंमें जहाँ विलासके रागरंगका प्रवाह बहता था, वहाँ कभी कभी सन्तसमागम, अतिथि-सत्कार और भगवन्नाम-कीर्तन भी हुआ करता था। यद्यपि धृष्टबुद्धिको इन कामोंसे कोई प्रेम नहीं था, वह रातदिन राजकार्य और धन-सञ्चयमें ही लगा रहता था, परन्तु सुयोग्य पुत्र मदनको स्नेहवश इन कामोंसे रोकता भी नहीं था।

× × × ×

सन्ध्याका समय है। चन्द्रहास स्वाभाविक ही नाम-कीर्तन करता हुआ नगरकी सड़कोंपर घूम रहा है। मधुर ध्वनि सुनकर और भी बहुतसे बालक उसके साथ हो गये हैं। सभी आनन्दसे नाच-नाचकर मधुर कीर्तन करते हुए नगरवासी नर-नारियोंका चित्त अपनी ओर खींच रहे हैं। घूमते-घूमते यह प्रेममत्त बाल-कीर्तन-दल धृष्टबुद्धिके प्रासादके निकट जा पहुँचा। मन्त्रीपुत्र मदनके यहाँ ऋषिमण्डली एकत्र हो रही है, हरिचर्चा चल रही है। मीठी हरिध्वनि सुनकर ऋषियोंकी आज्ञासे मदनने चन्द्रहासको अन्दर बुला लिया। चन्द्रहासके साथ मिलकर बालक नाचने-गाने

लगे। मुनिमण्डली मुग्ध हो गयी। इतनेमें वहाँ धृष्टबुद्धि भी आ गया। मुनियोंका मन चन्द्रहासके तेजपूर्ण मुखमण्डलकी विमल शीतल छटा देखकर उसकी ओर आकर्षित हो गया। उन्होंने उसे अपने पास बुलाकर बैठा लिया। उसके शरीरके लक्षणोंको देख-सुन और योगसे उसकी प्रतिभाका पता लगाकर ऋषि एकस्वरसे कहने लगे-

सुन्दर लक्षण-युक्त बाल यह है तपधारी, मन्त्रीवर !
रक्खो, पालन करो इसे अति स्नेहभावसे अपने घर ॥
सभी, तुम्हारी धन-सम्पतिका यही पूर्ण स्वामी होगा !
होगा नृपति देशका, वैष्णव-पदका अनुगामी होगा ॥

ऋषियोंके यह वचन अभिमानी धृष्टबुद्धिके हृदयमें तीर-से लगे। अज्ञात-कुल-गोत्र अनाथ बालक मेरी सम्पत्तिका स्वामी होगा! कहाँ मेरा पदगौरव, धन-ऐश्वर्य, दोर्दण्ड प्रबल प्रताप और कहाँ यह राहका भिखारी छोकरा ? तत्काल अभिमान द्वेषके रूपमें परिणत हो गया। धृष्टबुद्धिके मनमें भीषण हिंसावृत्ति जाग उठी, उसने अपना कर्तव्य निश्चय कर लिया। ऋषि और पुत्रोंसे कुछ न बतलाकर धृष्टबुद्धि बालकोंको मिठाई देनेके बहाने अन्तःपुरमें ले गया। वहाँ और सब बालक तो मिठाई देकर बाहर निकाल दिये गये, रह गया एक चन्द्रहास। थोड़ी ही देरमें मन्त्रीके सङ्केत-से एक विश्वासी घातक वहाँ आ पहुँचा। धृष्टबुद्धिने धीरेसे उसके

कानमें कुछ कहकर चन्द्रहासका हाथ उसे पकड़ा दिया। घातक चन्द्रहासको ले चला, तब उसने फिर कहा, 'देखो, आज ही काम बन जाय, कोई निशान जरूर लाना, पूरा इनाम मिलेगा!' घातक बालकको लेकर अदृश्य हो गया।

× × × ×

भीषण सुनसान जंगल है। चारों ओर अँधेरा छा रहा है। घातकने म्यानसे तलवार निकाली। चन्द्रहास समझ गया कि यह मुझे मारना चाहता है। उसने निर्भयतासे कहा—'भाई! तनिक ठहर जाओ, मुझे अपने भगवान्‌की पूजा कर लेने दो, फिर खुशीसे मारना।' घातकका हृदय कुछ पिघला, उसने अनुमति दे दी। चन्द्रहासने मुँहमेंसे शालग्रामजीकी मूर्त्ति निकालकर प्रेमसे आँसू बहाते हुए वनके फूल-पत्तोंसे भगवान्‌की पूजा की। तदनन्तर गद्गद कण्ठसे उसने गाया——

गहो आज हाथ नाथ! शरण मैं तिहारी!
तात-मात बन्धु-भ्रात सुहृद सौख्यकारी।
एक तुम्हीं सरबस मम प्रणत-दुःखहारी॥
दास जानि इच्छाधीन, इच्छित शुभकारी।
मृत्युमाँहि मोहन! मोहि, मिलौ मोह टारी॥

वनस्थलीमें करुणारस छा गया। भगवान्‌ने यन्त्र घुमाया, घातककी आँखोंसे आँसूकी दो बूँदें टपक पड़ीं। उसका हृदय

पलट गया। उसने मन-ही-मन सोचा ऐसे हरिभक्त निर्दोष बालककी हत्यासे न मालूम मेरी क्या गति होगी? वध करनेका विचार त्याग दिया, परन्तु धृष्टबुद्धिके लिये कोई निशान चाहिये, वह इस चिन्तामें पड़ गया। चन्द्रहासके एक पैरमें छः अँगुलियाँ थीं। अकस्मात् घातककी दृष्टि उधर गयी। उसका चेहरा चमक उठा, उसने तुरन्त ही तलवारसे छठी अँगुली काट ली। अशुभ स्वयमेव नष्ट हो गया। चन्द्रहासको वहीं छोड़कर घातक लौट गया, धृष्टबुद्धिको अँगुली दिखा दी, जिससे उसके आनन्दका पार नहीं रहा। उसने समझा, आज मेरे बुद्धिकौशलसे मुनियोंकी अमोघ वाणी भी व्यर्थ हो गयी!

× × × ×

घोर अरण्यमें सुकुमार शिशु अकेला पड़ा है, पैरमें पीड़ा हो रही है, परन्तु मुखसे वही कृष्णनामकी धुन लग रही है। इतनेमें उसने देखा, एक स्निग्ध नील ज्योति उसकी ओर बढ़ी चली आ रही है। उसी समय अकस्मात् जादूकी तरह उसकी सारी वेदना नष्ट हो गयी। भूख-प्यास शान्त हो गयीं, मुख-कमल प्रफुल्लित हो उठा, मन परम आनन्दसे भर गया। वनकी हरिणियाँ उसका पैर चाटने लगीं, पक्षियोंने छाया की, वृक्ष फल देने लगे, पृथ्वी कोमल हो गयी। बालक मुग्ध-चित्त और मधुर-कण्ठसे

नामध्वनि करने लगा। भीषण अरण्य हरिनाम-नादसे निनादित हो उठा, पशु, पक्षी परम आत्मीयकी तरह उसके साथ खेलने लगे।

× × × ×

कुन्तलपुरके अधीन एक छोटीसी चन्दनपुर नामक रियासत थी। वहाँके राजाका नाम था कुलिन्दक। राज्य छोटा होनेपर भी धर्म और धनधान्यसे पूर्ण था, अभाव था तो एक यही कि राजा पुत्रहीन था। प्रभुकी मायासे राजा कुलिन्दक किसी कार्यवश उसी वनसे जा रहा था, जिसमें चन्द्रहासको घातक छोड़ गया था। मधुर कीर्तनध्वनि सुनकर राजा उसके पास गया और बालककी मोहिनी मूर्त्ति देखते ही वह मुग्ध हो गया! राजाने लपककर बालकको गोदमें उठा लिया और अङ्गकी धूल झाड़कर उसके माता पिताके नाम-धाम पूछने लगा। चन्द्रहासने कहा—

'मम मातापिता कृष्णस्तेनाहं परिपालितः।'

—मातपिता श्रीकृष्ण हमारे उनसे ही मैं पालित हूँ।

राजाने सोचा हरिने कृपाकर मेरे लिये ही इस वैष्णव देव-शिशुको यहाँ भेजा है। उसने चन्द्रहासको छातीसे लगाकर घोड़ेपर चढ़ा लिया और घर लौट गया। रानीकी गोद भर गयी। राजाने दत्तक-ग्रहणकी घोषणा कर दी, नगरभरमें आनन्द छा गया!

चन्द्रहासने पहले तो कुछ पढ़ना नहीं चाहा, गुरु जब पढ़ाते तभी वह कहता कि मेरी जीभ हरिनामके सिवा और कुछ उच्चारण

ही नहीं कर सकती। परन्तु यज्ञोपवीत ग्रहण करनेके अनन्तर थोड़े ही कालमें वह चारों वेद और सभी विद्याओंमें निपुण हो गया। अपने सद्गुणोंसे वह शीघ्र ही सारे राजपरिवार और प्रजाका जीवनाधार बन गया। राज्यमें धार्मिकता छा गयी। हरि-गुण-गानसे छोटीसी रियासत पूर्ण हो गयी। घर-घर हरिचर्चा होने लगी, सभी लोग एकादशीका व्रत और भगवान्‌की उपासना करने लगे। चन्द्रहासने प्रत्येक पाठशालामें हरि-गुण-गान अनिवार्य कर दिया। उसका सिद्धान्त था—

यस्मिञ्छास्त्रे पुराणे च हरिनाम न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥

'जिस शास्त्र-पुराणमें हरिनाम न हो, वह ब्रह्मारचित होनेपर भी श्रवण करने योग्य नहीं है।'

× × × ×

चन्दनपुर रियासतकी ओरसे कुन्तलपुरको वार्षिक दश हजार स्वर्णमुद्राएँ कर-स्वरूप दी जाती थीं। चन्द्रहासने उन स्वर्णमुद्राओंके साथ ही और भी बहुत-सा धन जो शत्रुराज्योंपर विजय करके उसने प्राप्त किया था—कुन्तलपुर भेज दिया।

धृष्टबुद्धिने सुना, चन्दनपुर-राज्य धन-ऐश्वर्यसे पूर्ण हो गया है, वीर युवराजने बड़े बड़े राज्योंपर विजय पायी है, वहाँकी प्रजा सब प्रकारसे सुखी है, सारी रियासतमें हरि-ध्वनि

गूँज रही हैं। तब उसकी इच्छा हुई कि एक बार चलकर वहाँकी व्यवस्था देखनी चाहिये। धृष्टबुद्धि कुन्तलपुरसे चलकर शीघ्र ही चन्दनपुर आ पहुँचा।

धार्मिक राजा और धीर-वीर राजकुमारने उसका हृदयसे स्वागत किया। धृष्टबुद्धि युवराजके मुखकमलको देखकर चकित हो गया और एकटकी लगाकर उसकी ओर देखने लगा। पर चन्द्रहासको पहचानते ही उसके हृदयमें आग लग गयी, उसने मन-ही-मन जाल रचा। छलसे चन्द्रहासका वध करनेका निश्चय कर उसने बड़े पुत्र मदनके नाम एक गुप्त पत्र लिखा और *'विषरस भरा कनकघट जैसे'* की उक्तिको चरितार्थ करते हुए कपटसे हँसकर पत्र चन्द्रहासके हाथमें देकर कहा, 'राजकुमार! बड़ा आवश्यक कार्य है, इससे तुम्हारा और हमारा बड़ा हित होगा, अतएव आज ही कुन्तलपुर जाकर यह पत्र कुमार मदनको दो। देखना, रास्तेमें पत्र खुलने न पावे और न इसका रहस्य मदनके सिवा अन्य कोई जाने ही!'

× × × ×

चन्द्रहास घोड़ेपर सवार होकर उसी क्षण चल दिया। कुन्तलपुर वहाँसे चौबीस कोस था। पहुँचते-पहुँचते दिन ढल गया। नगरसे बाहर कुन्तलपुर-नरेशका सुन्दर बाग था। चन्द्रहास थकान मिटाने और जल पीनेके लिये बगीचेमें ठहर गया। सुहावने सरोवरमें स्वयं जल पिया और घोड़ेको पिलाया। रास्तेकी थकावट थी,

घोड़ेको एक ओर बाँधकर वह वृक्षकी छायामें लेट गया। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुके स्पर्शसे उसे नींद आ गयी।

उसी समय राजकुमारी चम्पकमालिनी और मन्त्री-कन्या विषया सखियों सहित बागमें टहलने आयी थीं। नानाप्रकारसे आमोद-प्रमोद कर राजकुमारी और अन्यान्य सखियाँ तो चली गयीं। भगवत्-प्रेरणासे विषया वहीं रह गयी। अनङ्ग-मद-मोचन राजकुमार चन्द्रहासको देखते ही उसका मन मोहित हो गया, मन-ही-मन उसने राजकुमारको पतिरूपमें वरण कर लिया। उसने देखा, कुमारके हाथमें एक पत्र है। विषयाने पत्र धीरेसे खींच लिया। भाई मदनके नाम पिताजीके हस्ताक्षरयुक्त पत्र देखकर उसने कुतूहलवश खोल लिया, परन्तु पत्र पढ़ते ही उसका हृदय व्याकुल हो उठा, शरीर थर्रा गया, मुखपर विषाद छा गया! पत्रमें लिखा था—

'स्वस्ति श्री प्रिय पुत्र मदन! देखत यह पाती।
विष दे देना, जिससे हो मम शीतल छाती॥
कुल विद्या सौन्दर्य शूरता कुछ न देखना।
मदन शत्रु इस राजकुँअरको हृदय लेखना॥'

'विषयाने विचार किया, ऐसे सुन्दर सलोने सिंहशावक राजकुमारको पिताजी विष क्यों दिलवाने लगे? हो न हो, मेरे योग्य वाञ्छित वर देखकर आनन्द-विह्वलतामें उनसे लिखनेमें

भूल हो गयी है। वास्तवमें 'विष दे देना' की जगह 'विषया देना' लिखना चाहिये था। पिताजी छाती शीतल होनेकी बात लिखते हैं, ऐसे नरश्रेष्ठको विष देकर भला किसकी छाती शीतल होगी ? बड़े भाग्यसे ऐसे दामाद मिलते हैं, इसीसे पिताजीने कुल, विद्या आदि कुछ भी न देखकर 'मदन शत्रु' यानी सुन्दरतामें कामदेवको भी परास्त करनेवाले इस नयनाभिराम राजपुत्रके हाथ तुरन्त मुझे दे देना चाहा है। परमेश्वरने बड़ा अच्छा किया, जो यह पत्र पहले मेरे हाथ लग गया, कहीं भाई साहेब भ्रमसे विष दे डालते तो महान् अनर्थ हो जाता!' विषयाने तर्कसे ऐसा निश्चयकर तुरन्त 'विष दे देना' के बीचके 'दे' को मिटाकर उसकी जगह 'या' अक्षर 'विष' शब्दसे मिलाकर लिख दिया, जिससे 'विषया देना' स्पष्ट पढ़ा जाने लगा। 'मदन शत्रु' शब्द अलग अलग थे उन शब्दोंको भी जोड़ दिया। जिससे 'मदन शत्रु' की जगह 'मदनशत्रु' पढ़ा जाने लगा। तदनन्तर आमके गोंदसे पत्र ज्यों-का-त्यों बन्दकर राजकुमारके हाथमें रखकर वह दौड़कर कुछ दूर आगे जाती हुई सखियोंके दलमें जा मिली। राजकुमारी और सखियाँ उससे मीठी चुटकियाँ लेने लगीं !

× × × ×

थोड़ी ही देरमें चन्द्रहासकी आँखें खुलीं, सन्ध्या होने आयी थी। उसने तुरन्त ही जाकर मदनको पत्र दे दिया, पत्र पढ़कर मदनको बड़ी प्रसन्नता हुई। ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उसी दिन गोधूलि लग्नमें

विषयाके साथ चन्द्रहासका विवाह बड़े समारोहके साथ हो गया। मदनने याचकोंको मुक्तहस्तसे दान देकर सन्तुष्ट किया। कन्यादानके समय कुन्तलपुर-नरेश स्वयं पधारे थे। राजकुमारकी मनमोहिनी रूप-गुण-राशि देखकर राजाने विचार किया कि, 'न तो चम्पकमालिनीके लिये इससे अधिक योग्य कोई दूसरा वर ही मिल सकता है और न राज्यशासनके लिये ऐसा बल-वीर्य-बुद्धि और शील-सदाचारसम्पन्न कोई उत्तराधिकारी ही!' राजाने उसी क्षण अपने मनमें धीर-वीर राजकुमार चन्द्रहासके हाथ राजपुत्रीसहित राज्य समर्पण करनेका निश्चय कर लिया।

तीन दिन बाद धृष्टबुद्धि लौटा। सर्वथा विपरीत दशा देखकर उसके दिलपर गहरी चोट लगी, परन्तु उसने अपने मनका कुभाव किसीपर प्रकट नहीं होने दिया। उसके द्वेष-हिंसापूर्ण मलिन अन्तः-करणने यही निश्चय किया कि 'कन्या चाहे विधवा हो जाय पर इस शत्रुका वध अवश्य करना होगा!' यही दुष्ट हृदयकी पराकाष्ठा है!

नगरसे दूर वनमें पहाड़ीपर भवानीका मन्दिर था, धृष्टबुद्धिने वहाँ एक निर्दय घातकको यह समझाकर भेज दिया कि आज सन्ध्याके बाद जो कोई वहाँ जाय उसीका सिर उतार लेना। इधर चन्द्रहाससे कपटकी हँसी हँसते हुए उसने कहा, 'भवानी हमारी कुलदेवी हैं, किसी भी शुभकार्यके अनन्तर ही हमारे यहाँ भवानी-

पूजनकी कुलरीति है; अतएव तुम आज ही सन्ध्याको वहाँ जाकर भवानीके भेंट चढ़ा आना।'

श्वसुरकी आज्ञासे सरलहृदय चन्द्रहास सामग्री लेकर भवानीके स्थानकी ओर चला। मनुष्य मन-ही-मन कितनी ही कुटिल कामना करता हुआ नानाप्रकारसे शेखचिल्लीकी तरह महल बनाता है, पर '*करी गोपालकी सब होय।*'

कुन्तलपुर-नरेशके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ, उन्होंने आज ही राज्य त्यागकर परमात्मपद-प्राप्तिका साधन करनेके लिये वन जानेका निश्चय कर लिया, परन्तु जानेसे पूर्व राजकुमारीका विवाह करना और किसीको राज्यका उत्तराधिकारी बनाना, ये दो आवश्यक कार्य करने थे! राजाने पूर्वनिश्चयके अनुसार मन्त्रीपुत्र मदनको बुलाकर कहा—'बेटा! मेरी आज ही वन जानेकी इच्छा है; चम्पकमालिनीका हाथ किसी योग्य राजपूत-बालकको सौंपना चाहता हूँ, राज्यका उत्तराधिकार भी देना है। हम लोगोंके सौभाग्यसे भगवान्‌ने कृपाकर चन्द्रहासको यहाँ भेज दिया है। वह सब तरहसे योग्य है, तुम अभी जाकर चन्द्रहासको यहाँ भेज दो!'

राजाकी बात सुनकर सरल-हृदय मदनके हर्षका पार न रहा, वह दौड़ा बहनोईको बुलाने। पिताकी दुरभिसन्धिका उसे

कुछ भी पता नहीं था। चन्द्रहास भवानीके मन्दिरकी ओर जाता हुआ उसे रास्तेमें मिला। उसने राजाज्ञा सुनाकर चन्द्रहासको राजमहलमें भेज दिया और उससे पूजाकी सामग्री लेकर स्वयं सीधा ही भवानीके मन्दिर चला गया। कहना नहीं होगा कि मन्दिरमें पहुँचते ही घातककी तीक्ष्णधार तलवारने उसके शरीरके दो टुकड़े कर दिये! चन्द्रहास बच गया —

'जाको राखै साइयाँ, मार न सकिहैं कोय।
बार न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥'

इधर कुन्तलपुर-नरेशने चम्पकमालिनीका हाथ चन्द्रहासको पकड़ाकर आशीर्वाद दिया और उसी समय गालवमुनिकी आज्ञासे चन्द्रहासका राज्याभिषेक भी हो गया! चम्पकमालिनीके साथ चन्द्रहासने मुनिकी अनुमतिसे गान्धर्व विवाह कर लिया! राजा सब कुछ छोड़-छाड़कर मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समबुद्धि कर वनको चले गये—

'वनं जगाम सन्त्यज्यं समलोष्टाश्मकाञ्चनः।'

धृष्टबुद्धिने सोचा था कुछ और, पर हुआ कुछ और ही—'*तेरे मन कछु और है कर्ताके कछु और।*' दूसरे दिन प्रातःकाल धृष्टबुद्धिने जब चन्द्रहासके साथ चम्पकमालिनीके विवाह और उसके राज्याभिषेक होने तथा प्रिय पुत्र मदनके घातकद्वारा मारे

जानेका समाचार सुना, तब तो उसके सिरपर वज्र ही टूट पड़ा ! सत्य है–'*परार्थे योऽवटं कर्ता तस्मिन्सम्पतति ध्रुवम् ।*' दूसरोंके लिये खाई खोदनेवाला स्वयं निश्चय ही उसमें पड़ता है ।

धृष्टबुद्धि हतबुद्धि होकर भवानीके मन्दिरकी ओर दौड़ा । वहाँ पहुँचकर उसने देखा, कि प्राणाधिक पुत्रका शरीर दो टुकड़े हुए पड़ा है, उसने शोकसे व्याकुल होकर नानाप्रकार विलाप करते हुए उसी समय तलवारसे आत्महत्या कर ली !

श्वसुर धृष्टबुद्धिको उन्मत्तकी तरह दौड़ते देखकर चन्द्रहास भी उसके पीछे-पीछे चला था । मन्दिरमें जाकर चन्द्रहासने देखा कि पिता-पुत्र दोनों मरे पड़े हैं । चन्द्रहासने इन दोनों जीवोंकी मृत्युमें अपनेको कारण समझकर स्वयं मरना चाहा । ज्यों ही उसने तलवार म्यानसे निकाली, त्यों ही भवानीने साक्षात् प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे खींचकर अपनी गोदमें बैठा लिया ! जन्मसे मातृहीन चन्द्रहासको आज जगज्जननीकी गोदमें बैठनेसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई ।

माता बोली, 'मेरे लाल चन्द्रहास ! धृष्टबुद्धि बड़ा दुष्ट था, उसने तुझे मारनेके लिये बड़े बड़े जाल रचे थे, अच्छा हुआ वह मारा गया । हाँ, यह मदन भक्त और तेरा प्रेमी था परन्तु इसने तेरे विवाहके समय धन-ऐश्वर्यके दानको पर्याप्त न समझकर

अपना शरीर तुझे अर्पण करनेकी प्रतिज्ञा की थी, अतः यह भी उससे उऋण हो गया है। तू शोक छोड़कर राज्य कर। मैं प्रसन्न हूँ, इच्छित वर माँग!'

चन्द्रहासने कहा, 'जननी! तुम वर देना चाहती हो, मुझपर प्रसन्न हो तो पहला वर तो मुझे यह दो कि '*हरौ भक्तिः सदा भूयान्मम जन्मनि जन्मनि।*' हरिमें मेरी जन्म-जन्ममें भक्ति सर्वदा बनी रहे और दूसरा वर यह दो कि 'मेरे लिये मरे हुए ये दोनों व्यक्ति इसी समय जी उठें, मेरे श्वसुर धृष्टबुद्धिने मुझे मारनेके लिये जो कुछ किया, उसका मुझे तनिक भी दुःख नहीं है, मनुष्य अज्ञानवश यों किया ही करता है। माता! इसे क्षमा करो, इसे सुबुद्धि दो, इसके पापोंका विनाश कर इसे भगवान्‌की विमल भक्ति प्रदान करो।'

भवानी प्रेमभरी वाणीसे 'तथास्तु' कहकर अन्तर्द्धान हो गयी! दोनों पिता-पुत्र सोकर जगनेकी तरह उठ बैठे और उन्होंने चन्द्रहासको गले लगा लिया!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

सीताजीकी अग्निपरीक्षा
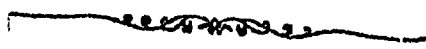
सुधन्वा

'अहा ! मेरा बड़ा सौभाग्य है, आज इसी बहाने साकाररूपसे प्रकट सच्चिदानन्दघन परमात्मा पार्थ-सारथि त्रिभुवन-मोहन भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कर नेत्रोंको सफल करूँगा। सुना है उनका सौन्दर्य अप्रतिम है, उनके चरित्र विचित्र हैं, इन अभागी आँखोंने प्रभुके चारुचरणोंका दर्शन आजतक नहीं किया, वृद्धावस्था आ गयी। आज रणाङ्गणमें उनके चरण-दर्शन कर जन्म-जीवनको सार्थक करूँगा।' चम्पकपुरीके भक्त राजा हंसध्वजने ऐसा मनोरथ करते हुए सेना-पतिको आज्ञा दी—

न मया वीक्षितः कृष्णो वृद्धेनापि स्वचक्षुषा।
तस्मान्निर्यान्तु मे वीरा युद्धार्थं याम्यहं रणम्॥

'मैं वृद्धावस्थाको प्राप्त होकर भी अबतक अपनी आँखोंसे श्रीकृष्णके दर्शन नहीं कर पाया हूँ, अतएव मेरे सारे वीर युद्धार्थ यात्रा करें, मैं भी रणक्षेत्रमें चलता हूँ।'

× × ×

पाण्डवोंके अश्वमेध-यज्ञका घोड़ा चम्पकपुरीके पास पहुँच

गया । महावीर अर्जुन दिव्य शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर प्रद्युम्नादि वीरोंसहित अश्वकी रक्षाके लिये पीछे पीछे चले आ रहे हैं। राजा हंसध्वजने दूतोंसे इस सुसंवादको सुनकर क्षत्रिय-धर्मके अनुसार रणकी तैयारी की और साथ ही एक अनुगत भक्तके नाते पार्थ-सारथि भगवान्‌के दर्शनकी प्रबल भावनासे रणक्षेत्रकी ओर प्रयाण किया ।

राजा हंसध्वज बड़े ही धर्मात्मा, प्रजापालक, शूरवीर और भगवद्भक्त थे । उनके राज्यमें एक विशेषता यह थी कि राजघरानेके पुरुषों सहित प्रजाके सभी पुरुष एक-पत्नी-व्रतका पालन करनेवाले थे तथा देशके सभी नर-नारी भगवान्‌के परम भक्त थे । राज्यमें नौकरीके लिये बाहरसे कोई आदमी आता, तो राजा सबसे पहले उससे कहते थे--

एकपत्नीव्रतं तात यदि ते विद्यतेऽनघ।
ततस्त्वां धारयिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥
न शौर्यं न कुलीनत्वं न च क्वापि पराक्रमः ।
स्वदाररसिकं वीरं विष्णुभक्तिसमन्वितम् ॥
वासयामि गृहे राष्ट्रे तथाऽन्येऽपि हि सैनिकाः ।
अनङ्गवेगं स्वां ते ये धारयन्ति महाबलाः ॥

'हे निष्पाप ! तुम यदि एक-पत्नी-व्रतका पालन करनेवाले हो तो मैं तुम्हें रख सकता हूँ; भाई ! मैं सत्य कहता हूँ कि

निकम्मी शूरता, कुलीनता और पराक्रम मैं नहीं चाहता। जो वीर केवल अपनी एक ही पत्नीमें प्रेम करनेवाला और भगवान्‌की भक्तिसे सम्पन्न होगा, मैं उसीको अपने घर तथा राष्ट्रमें स्थान दे सकता हूँ। जो कामदेवके प्रबल वेगको धारण करते हैं वे ही वास्तवमें महाबली हैं।' इस प्रकार अधिकारी और प्रजा सभीका जीवन धर्म और सदाचारपर अवलम्बित था। राजाकी सेनामें सभी योद्धा—

सर्वे ते वैष्णवा वीराः सदा दानपरायणाः।
एकपत्नीव्रतयुताः संयतास्ते प्रियंवदाः॥

—भगवद्भक्त, रण-वीर, दीनोंपर दया करके उन्हें दान देनेवाले, एक पत्नी-व्रती, सद्‌बुद्धियुक्त और प्रिय बोलनेवाले थे। अतएव राजाकी आज्ञा पाकर सभी वीर अर्जुनके साथ लोहा लेनेको तैयार हो गये। घोड़ा पकड़ लिया गया और नीति तथा धर्मशास्त्रके प्रगाढ़ पण्डित राज-गुरु ऋषिवर शंख और लिखितकी आज्ञानुसार यह भीषण मुनादी करवा दी गयी कि 'अमुक समय तक सभी योद्धा रणाङ्गण-में उपस्थित हो जायँ। ठीक समयपर जो नहीं पहुँचेगा वह उबलते हुए तैलके कड़ाहेमें डलवा दिया जायगा। यह आज्ञा राजकुमार और राजाके भ्राताओंपर समानरूपसे ही लागू होगी'—

न निर्गच्छति यः कश्चित् कटाहे तैलपूरिते।
पात्यते ज्वलिते घोरे नप्तापुत्रसहोदराः॥

राजाके सभी सेनानायक मन्त्री, भ्राता और सुबल, सुरथ, सम तथा सुदर्शन नामक चारों पुत्र रणक्षेत्रकी ओर चल दिये। सबसे छोटे राजकुमारका नाम सुधन्वा था। वीर सुधन्वा अपनी वीरप्रसविनी जननीसे आज्ञा माँगनेके लिये गया और वहाँ पहुँचकर मातृचरणोंमें अवनत-मस्तक हो प्रणाम कर कहने लगा—'मा! मैं आज सौभाग्यसे सुप्रसिद्ध वीर अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये जा रहा हूँ। आप आज्ञा दें ताकि मैं पार्थद्वारा सुरक्षित 'हरि' को (घोड़ेको) जीतकर ला सकूँ।' वीर माता भगवान्‌की परम भक्त थीं, उन्हें पता था कि इस वार रणसे पुत्रका वापस लौटना कठिन है। अतएव माताने कहा—

गच्छ पुत्र! हरिं युद्धे विजित्य मम सन्निधौ।
हरिं चतुष्पदं त्यक्त्वा तं समानय मुक्तिदम्॥

"बेटा! रणमें जाकर 'हरि'को जीतकर अवश्य मेरे पास लेआ, परन्तु लाना मुक्तिदाता हरिको, चार पैरवाले पशुको नहीं। तेरे प्रतापी पिताने आजतक रणमें बड़े बड़े वीरोंपर विजय प्राप्त की है, परन्तु कंसहन्ता श्रीकृष्णके दर्शन उन्हें अबतक नहीं हुए। आज हे पुत्र! तू हम लोगोंको उन श्रीकृष्णके दर्शन करानेवाला हो। तू आज वही कर्म कर जिससे श्रीकृष्ण प्रसन्न हों। तेरे बड़े भाग्य हैं जो आज तू श्रीकृष्णको अपने इन नेत्रोंसे देख सकेगा परन्तु श्रीकृष्णका मिलना बहुत कठिन है। मैं तुझे एक

उपाय बतलाती हूँ। भगवान् भक्तवत्सल हैं, उन्होंने अपनी भक्तवत्सलताके कारण ही कुरुक्षेत्रके भीषण समरमें अर्जुनके रथके घोड़े हाँके थे। आज भी वे अर्जुनकी रक्षाके लिये आ सकते हैं, अतएव तू यदि अर्जुनको रणमें छका सके, उसको व्याकुल कर सके तो श्रीकृष्ण तेरे सामने प्रकट हो सकते हैं। मैंने सुना है श्रीकृष्ण अपने भक्तको उसी प्रकार नहीं छोड़ सकते जैसे वनमें गये हुए बछड़ेको छोड़कर गौ घर नहीं लौटती—

स्वभक्तं न त्यजत्येष मनाक् पुत्र मया श्रुतम्।
यथा वनगतं वत्सं त्यक्त्वा नायाति गौस्तथा॥

भगवान् अपने भक्तको विपत्तिमें अकेला नहीं छोड़ते। बेटा! तू उन भक्तवत्सल श्रीकृष्णसे भय न करना, उनसे डरनेवाला जी नहीं सकता। यदि तू डर जायगा तो सब लोग मुझे हँसेंगे कि तेरा पुत्र श्रीकृष्णको देखकर रणसे विमुख हो गया। यदि तू लड़ते-लड़ते रणमें धराशायी होकर वीरोंकी श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होगा तो मुझे उसमें हर्ष होगा। पुत्र! इस बातको याद रखना कि श्रीकृष्णके सामने रणमें मरनेवाला पुरुष वास्तवमें मरता नहीं, वह तो अपनी इक्कीस पीढ़ीका उद्धार करनेवाला होता है।

हरेः किं सम्मुखः पुत्रं पतितः पतितो भवेत्।
तेनैव चोद्धृताः सर्वे आत्मना चैकविंशतिः॥

संसारमें उन्हीं माताओंको रोना पड़ता है जिनके पुत्र-पौत्र भगवान् श्रीहरिकी ओर नहीं जाते।"

एक दिन सच्ची माता देवी सुमित्राजीने भी प्रिय पुत्र लक्ष्मणको यही उपदेश दिया था—

पुत्रवती युवती जग सोई ।
रघुवर-भक्त जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बियानी ।
राम-विमुख सुततें बड़ि हानी ॥

माताके सदुपदेशको सुनकर वीर सुधन्वाने जननीको सन्तोष कराते हुए कहा । 'माता ! तुम्हारी आज्ञानुसार युद्धमें प्रवृत्त होकर जी-जानसे लड़कर हरिको लाऊँगा । पुरुषार्थ करना मेरे अधीन है, फल भगवान्‌के हाथ है, परन्तु श्रीकृष्णको देखकर यदि मैं विमुख हो जाऊँ तो न तेरे पेटसे पैदा हुआ कहाऊँ और न मुझे सद्गतिकी ही प्राप्ति हो ।' धन्य वीर !

तदनन्तर बहन कुवलासे अनुमति और उत्साह प्राप्तकर सुधन्वा अपनी सती पत्नी प्रभावतीके पास गया, वह पहलेसे ही दीपकयुक्त सुवर्णके थालमें चन्दन-कपूर लिये आरती उतारनेको दरवाजेपर ही खड़ी थी । सतीने बड़े भक्ति-भावसे वीर-पतिकी पूजा की, तदनन्तर धैर्यके साथ आरती करती हुई नम्रताके साथ पतिके प्रति प्रेमभरे गुह्य वचन कहने लगी—'हे प्राणनाथ ! मैं आपके श्रीकृष्णके दर्शनार्थी मुखकमलका दर्शन कर रही हूँ, परन्तु नाथ ! मालूम होता है आज

आपका एक-पत्नी-व्रत नष्ट हो जायगा। पर आप जिसपर अनुरक्त होकर उत्साहसे जा रहे हैं वह स्त्री मेरी बराबरी कभी नहीं कर सकेगी। मैंने आपके सिवा दूसरेकी ओर कभी भूलकर भी नहीं ताका है, परन्तु वह 'मुक्ति' नाम्नी रमणी तो पिता, पुत्र सभीके प्रति गमन करनेवाली है। आपके मनमें 'मुक्ति' बस रही है, इसीसे श्रीकृष्णके द्वारा उसके मिलनेकी आशासे आप दौड़े जा रहे हैं। पुरुषों-का चित्त देव-रमणियोंकी ओर चला ही जाता है परन्तु आप यह निश्चय रखिये कि श्रीहरिको देखकर, उनकी अतुलित मुखच्छविके सामने 'मुक्ति' आपको कभी प्रिय नहीं लगेगी। क्योंकि उनके भक्त-जन, जो उनकी प्रेम-माधुरीपर अपनेको न्योछावर कर देते हैं, मुक्तिकी कभी इच्छा नहीं करते। मुक्ति तो दासीकी तरह चरण-सेवाका अवसर ढूँढ़ती हुई उनके पीछे पीछे घूमा करती है, परन्तु वे उसकी ओर ताकते ही नहीं। यहाँ तक हरि स्वयं भी कभी उन्हें मुक्ति प्रदान करना चाहते हैं, तब भी वे उसे ग्रहण नहीं करते। इसीलिये श्रीहरिने उनका गुण गान करते हुए यह कहा है कि—

> **सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।**
> **दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥**
>
> (श्रीमद्भागवत)

मुझमें अनुरक्त भक्तगण, मेरी सेवाको छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंको

मेरे देनेपर भी ग्रहण नहीं करते। अतएव जबतक आप श्रीकृष्णकी अनुपम रूप-माधुरीको नहीं देखते, तभीतक मुक्तिकी चाह करते हैं।

इसके सिवा पुरुषोंकी भाँति स्त्री पर-पुरुषोंके पास नहीं जाया करती। नहीं तो आपके चले जानेपर यदि मैं 'मोक्ष' के प्रति चली जाऊँ तो आप क्या कर सकते हैं? परन्तु विवेक नामक अदृश्य पुत्र निरन्तर मेरी रक्षा करता है। जिन स्त्रियोंके विवेक नामक पुत्र नहीं है, वे ही परपुरुषके पास जाया करती हैं। मुझे लड़कपनसे ही विवेकपुत्र प्राप्त है, इसीसे हे आर्य! मुझे मोक्षके पास जानेमें संकोच हो रहा है।'

पत्नीके मधुर, मार्मिक वचनोंका उत्तर देते हुए सुधन्वाने कहा—

'हे शोभने! जब मैं श्रीकृष्णके साथ लड़नेको जा रहा हूँ तो तुम्हें मोक्षके प्रति जानेसे कैसे रोक सकता हूँ? तुम भी मेरे उत्तम वस्त्र, स्वर्ण-रत्नोंके समूह और इस शरीर तथा चित्तको त्यागकर चली जाओ। मैं तो यह पहलेसे ही जानता था कि तुम 'मोक्ष'के प्रति आसक्त हो। इसीसे तो मैंने प्रत्यक्षमें विवेक-पुत्रके उत्पन्न करनेकी चेष्टा नहीं की।'

प्रभावतीने कहा—'प्राणनाथ! आप अर्जुनसे लड़ने जा रहे हैं, पर मेरे हृदयमें विवेक नामक जो पुत्र है, मैं उसे नेत्रोंसे

देखना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि आपके चले जानेपर अञ्जलि देनेवाला सुपुत्र रहे।'

सुधन्वा–श्रीकृष्ण और अर्जुनको जीतकर भी तो मैं तुम्हारे पास आ सकता हूँ।

प्रभावती–नहीं नाथ! जिसने श्रीकृष्णके दर्शन कर लिये हैं वह फिर संसारमें कभी लौटकर नहीं आता!

सुधन्वा–यदि तुम्हारा यही निश्चय है कि श्रीकृष्ण-दर्शन करनेपर पुनरागमन नहीं होता तो फिर व्यर्थ ही अञ्जलि देनेवाले पुत्रकी इच्छा करती हो।

प्रभावती–मेरी इच्छा भी तो आपको पूर्ण करनी चाहिये।

सुधन्वा–कल्याणी! क्या तुम कठिन शासनकर्त्ता महाराज-को नहीं जानती! तनिकसी देर होनेपर ही तप्त तेलका कड़ाह तैयार है। सारे वीर चले गये हैं, एक मैं ही शेष हूँ।

अनेक प्रकारसे प्रश्नोत्तर हुए। अन्तमें इस धर्म-संकटमें पतिव्रता प्रभावतीकी विजय हुई। सुधन्वा फिरसे स्नान-प्राणायाम कर युद्धके लिये रथपर सवार होकर चले।

× × × ×

युद्धक्षेत्रमें वीरोंके दलके दल इकट्ठे हो रहे हैं। चारों ओर रणदुन्दुभि और शंखध्वनि हो रही है। चारों कुमार और समस्त

सेनानायकोंने आकर महाराज हंसध्वजका अभिवादन किया। परन्तु वीरश्रेष्ठ राजकुमार सुधन्वा अभी नहीं पहुँचे। महाराजने सेनापतिसे कहा, 'क्या बात है, मैं सुधन्वाको नहीं देख रहा हूँ। इतना प्रमाद उसने कैसे किया, क्या वह मेरी कठिन आज्ञाको भूल गया? उसने बड़ा बुरा किया। तुरन्त कुछ सैनिक जायँ और उस दुष्टके केश पकड़कर पृथ्वीपर घसीटते हुए तैलके कड़ाहेके पास ले आवें।' कठिन राजाज्ञाको पाकर कुछ सिपाही चले। सुधन्वाजी उन लोगोंको राहमें मिले। मर्माहत हृदयसे कठोर राजाज्ञा सुनानेका कठिन कर्तव्य सिपाहियोंको पालन करना पड़ा। सुधन्वाने पिताके चरणोंमें पहुँचकर अत्यन्त विनयसे प्रणाम किया, और विलम्ब होनेका कारण संक्षेपसे सुना दिया। राजा हंसध्वज क्रोधसे अधीर हो रहे थे, उन्होंने कहा—'तू बड़ा मूर्ख है। भगवान् श्रीहरिकी कृपा बिना केवल पुत्रसे कभी सद्गति नहीं मिल सकती। यदि पुत्रवानोंकी ही सद्गति होती हो तो कुत्ते और शूकरोंकी तो अवश्य ही होनी चाहिये। तेरे बल, विचार और धर्मको धिक्कार है जो श्रीकृष्णका नाम सुन लेनेपर भी तेरा मन कामके वश हो गया, ऐसे मलिन मन, काम-रत, कृष्ण-विमुख कुपुत्रको तप्त तैलके कड़ाहेमें डुबो देना ही उचित है।' सुधन्वाने मस्तक नीचा किये धैर्यपूर्वक सारी बातें सुन लीं।

राजाने पुरोहित शंख-लिखितके पास व्यवस्थाके लिये दूत भेजे। पुरोहितजी बड़े क्रोधी थे, उन्होंने दूतोंकी बात सुनते ही कहा कि 'राजा अपने पुत्रके कारण मोहसे व्यवस्था पूछता है। जब सबके लिये एक ही विधान निश्चित था तब व्यवस्थाकी कौनसी बात है? जो मन्दात्मा लोभ या भयसे अपने वचनोंका पालन नहीं करता वह बहुत कालतक नरकके दारुण दुःख भोगता है। राजा हरिश्चन्द्र और दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रने वचनोंके पालनके लिये कैसे कैसे कष्ट सहन किये थे। आज हंसध्वज पुत्रस्नेहके कारण अपने वचन असत्य करना चाहता है तो हम ऐसे अधर्मी राजाके राजमें रहना ही नहीं चाहते।' इतना कहकर दोनों कट्टर ऋषि चल दिये। दूतोंने जाकर सब समाचार राजाको सुनाये। राजा हंसध्वज मन्त्रीको यह आज्ञा देकर कि 'सुधन्वाको उबलते तैलके कड़ाहेमें डाल दो' पुरोहितोंको मनाने चले। मन्त्रीको बड़ा खेद है परन्तु कोई उपाय नहीं! मन्त्रीने सुधन्वासे अनेक प्रकार क्षमा-प्रार्थनाकर अपना कर्तव्य निवेदन किया। सुधन्वाने धीरतासे कहा 'मन्त्रिवर! आपको महाराजकी आज्ञाका अवश्य पालन करना चाहिये। श्रीपरशुरामजीने पिताके वचन मानकर माताका मस्तक काट डाला था। मुझे अपनी मृत्युका कोई भय नहीं है। आप निस्संकोच मुझे तैलमें डलवा दीजिये।' सब लोगोंने मन्त्र-मुग्धकी तरह सुधन्वाकी बातें सुनीं। चारों ओरसे लोगोंकी आँखों से आँसुओंकी धारा बहने लगी। परन्तु सुधन्वा प्रसन्न-चित्त हैं।

उसने दिव्य वस्त्र धारणकर, तुलसीकी माला गलेमें पहन ली और भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए वह श्रीकृष्णके प्रति यों कहता हुआ तैलके कड़ाहेमें कूद पड़ा-'हे हरे ! हे गोविन्द ! हे भक्त-भय-भञ्जन ! मुझे मरनेका तनिक भी भय नहीं है, मैं तो आपके चरणोंमें प्राण देनेको ही तो आया था, परन्तु आपका तिरस्कार कर मैंने बीचमें ही जो कामकी सेवा की, इसीसे मालूम होता है मैं आपके प्रत्यक्ष दर्शनसे वञ्चित रहता हूँ और इसीसे हे प्रभो ! सम्भवतः आप मेरी रक्षाके लिये इस समय हाथ नहीं बढ़ा रहे हैं। जो लोग केवल भयसे व्याकुल होकर कष्टमें पड़कर ही आपका स्मरण करते हैं, मालूम होता है उन्हें सुखकी प्राप्ति नहीं होती। भक्त प्रह्लाद, ध्रुव, द्रौपदी और गोपादिने पहले भी आपका स्मरण किया था, इसीसे विपत्तिके समय आपने उनकी रक्षा की। अन्तकालमें आपका ध्यान करनेसे मनुष्य आपको प्राप्त होता है, इससे हे जनार्दन ! मैं आपको प्राप्त तो अवश्य करूँगा परन्तु लोग अवश्य यह कहेंगे कि सुधन्वा वीर होकर भी युद्धसे विमुख होकर कड़ाहेमें जलकर मरा। आपके भक्त वीर अर्जुनको और आपको युद्धक्षेत्रमें बाणवर्षासे प्रसन्न करके तथा गाण्डीव धनुषके छूटे हुए नुकीले बाणोंसे खण्ड खण्ड होकर मरता तो कोई चिन्ता नहीं थी। परन्तु आज अपराधी चोरकी भाँति मर रहा हूँ ! इसलिये यदि आप इस बालकका इस प्रकार मरणको प्राप्त होना अनुचित समझते हैं तो अग्निदाहसे बचाकर इस

शरीरको अपने चरणोंके सामने गिराइये। मैं तो आपका ही हूँ, आपका ही रहूँगा। आप सब प्रकार समर्थ हैं, लज्जारूपी समुद्रमें पड़ी हुई द्रौपदीका पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्यके सामने आपने ही वस्त्रावतार धारण कर उद्धार किया था।'

प्रभुकी लीला विचित्र है! एक दिन प्रह्लादके लिये प्रभुने अग्निको शीतल कर दिया था। एक दिन इन्द्रादि देवोंका दर्प चूर्ण करनेके लिये दर्पहारीने दावानलकी दाहशक्ति हर ली थी। आज भक्त सुधन्वाको बचानेके लिये भी तैल ऐसा शीतल हो गया जैसा सज्जनोंका चित्त होता है। '*तैलं सुशीतलं जातं सज्जनस्येव मानसम्*' सुधन्वा प्रेमसे 'गोविन्द, दामोदर, माधव' आदि हरिके पवित्र नामोंका कीर्तन करता हुआ तनकी सुधि भूल गया। कड़ाहेमें उसकी प्रेम-समाधि हो गयी। उबलते हुए तैलमें पड़कर भी सुधन्वा जल नहीं रहा है और तैलके ऊपर ऊपर तैर रहा है, यह देखकर लोगोंके आश्चर्यका पार नहीं रहा। राजा हंसध्वज दोनों पुरोहितोंको साथ लिये इससे पहले ही पहुँच गये थे। राजाको भी बड़ा विस्मय हुआ।

भगवान्‌की भक्ति और श्रद्धासे रहित केवल तर्क और बुद्धिके अभिमानपर निर्भर करनेवाले घमण्डी पुरोहित शङ्खने सुधन्वापर सन्देह प्रकट करते हुए राजासे कहा कि 'राजन्!

क्या बात है ? तेल गरम नहीं हुआ या तेरा पुत्र कोई औषध-मन्त्र जानता है । इसका मुख प्रफुल्लित कमलकी भाँति कान्तियुक्त होकर तेजसे झलमला रहा है । इसके अंगपर कहीं एक फफोला भी नहीं पड़ा । हो न हो, इसमें कुछ न कुछ चालाकी है । यदि तेल वास्तवमें गरम होता तो ऐसा कभी नहीं होता । गरम तेलसे मनुष्यका न जलना तो प्रकृतिसे विरुद्ध है ।' हाय ! धर्मशास्त्रज्ञ ब्राह्मण ! आपने अभी यह नहीं जाना कि, प्रभु प्रकृतिके स्वामी हैं, उनकी इच्छासे, नहीं, नहीं, संकल्पमात्रसे ही असम्भव सम्भव हो जाता है—

'मसकहि करहिं बिरञ्चि प्रभु, बिधिहिं मशकतें हीन ।'

शङ्खसे नहीं रहा गया, उन्होंने तेलकी परीक्षाके लिये कड़ाहेमें एक नारियल डलवाया । उबलते हुए तेलमें पड़ते ही नारियल तड़ाकसे फूटा, उसके दो टुकड़े हो गये और उछलकर शङ्ख और लिखित दोनों ऋषियोंके माथेमें जाकर जोरसे लगे । मुनि घबरा गये । अब उनकी आँखें खुलीं । भगवान् और उनके भक्तोंका माहात्म्य समझमें आ गया !

मुनिवर शंखने नौकरोंसे पूछा कि उबलते हुए तेलमें सुधन्वाके न जलनेका क्या कारण है । क्या इसने कोई मन्त्र-जप किया था या शरीरमें कोई ऐसी जड़ी बाँध ली, जिससे इसको तेलकी ज्वाला नहीं लगी ? नौकरोंने नम्रतासे कहा, 'मुनिवर ! हमने तो राजकुमारको कोई भी मन्त्र जपते या औषध बाँधते नहीं देखा ।

हाँ, कुमारने आर्त्त होकर उस महामति भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण अवश्य किया था, जिसके स्मरणमात्रसे जीव जन्म-मरणके सङ्कटसे छूट जाते हैं *'यस्य स्मरणमात्रेण मुच्यन्ते योनिसङ्कटात् ।'* 'अब भी सुधन्वाके फरकते हुए होठ देखिये, इनसे भगवान् श्रीकृष्णके नामका कैसे सतत स्मरण हो रहा है ?' यह सुनकर शङ्खमुनिने अपनेको धिक्कारते हुए कहा कि 'इसको धन्य है, यह महान् साधु है. जो इसने भगवान् विष्णुके स्मरणमें इतना मन लगाया । हम सरीखे व्यर्थ-पण्डितोंको धिक्कार है जो पाण्डित्यके अभिमानमें भगवान्‌से विमुख हो रहे हैं ।' इसी प्रकार एक दिन व्रजमें भी यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंने अपनी पत्नियोंके अतुलित श्रीकृष्ण-प्रेमसे प्रभावान्वित होकर अपनेको धिक्कार देते हुए कहा था—

धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम् ।
धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥
नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ।
यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥
अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ।
दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान्गृहाभिधात् ॥
नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥

अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे।
भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥

(श्रीमद्भागवत १० । २३ । ३९–४३)

'भगवान् श्रीहरिसे विमुख हम ब्राह्मणोंके तीनों जन्मोंको (एक गर्भसे, दूसरा उपनयनसे, तीसरा यज्ञदीक्षासे), ब्रह्मचर्य-व्रतको, बड़ी जानकारीको, उत्तम कुलको और यज्ञादि कर्मोंमें हमारी निपुणताको बार बार धिक्कार है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान्‌की माया योगियोंको भी मोहित कर देती है। हा ! लोगोंको उपदेश करनेवाले गुरु होकर भी हम आज अपने यथार्थ स्वार्थसे चूक गये। अहो ! इन स्त्रियोंमें जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णके प्रति कैसी अनन्य-भक्ति है, जिससे इन्होंने घरकी सारी ममताको, जो कठिन मृत्यु-पाश है, क्षणभरमें तोड़ डाला। इन स्त्रियोंका न तो हमारी भाँति यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ, न इन्होंने गुरुके यहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त की, न तप किया, न आत्मज्ञानकी मीमांसा की। न इनमें शौच है और न ये यज्ञादि शुभ-कर्म ही करती हैं, तो भी योगेश्वरोंके ईश्वर पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णमें इनकी सुदृढ़ भक्ति है। हमारे सब संस्कार हुए हैं तथा हममें विद्या, विवेक, तप, शौच और यज्ञादि क्रिया भी हैं तथापि बड़े शोककी बात है कि हम लोगोंमें भगवान्‌की भक्ति नहीं है।'

वास्तवमें बात भी यही सत्य है, बड़ा और बुद्धिमान् वही

है जो भगवान्‌के चरणोंका नित्य चिन्तन करता हुआ उनके शरण रहता है। भक्तराज प्रह्लादने इसीलिये कहा था कि बारह प्रकारके सद्‌गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमलनाभके चरणकमलसे विमुख हो तो उसकी अपेक्षा वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जिसने अपने तन, मन, धन, वचन, कर्म और प्राणोंको भगवान्‌के समर्पण कर दिया है, वह भगवद्भक्त चाण्डाल अपने सारे कुलको पवित्र कर सकता है परन्तु वह बहुसम्मानयुक्त ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता ! (श्रीमद्भागवत ७।९।९) अस्तु !

आज शंखमुनिको अपने कियेपर बड़ा पश्चात्ताप है और वह कहते हैं 'मैं इस तप्त तैलके कड़ाहेमें कूदकर मरणान्तिक प्रायश्चित्त करूँगा।' '*प्रायश्चित्तं स्वदेहस्य करिष्ये मरणान्तिकम्।*' इतना कहकर मुनि कूदकर तैलके कड़ाहेमें गिर पड़े, परन्तु भक्त सुधन्वाकी शुभ भावनासे उबलता हुआ तैल उनके लिये भी शीतल हो गया। मुनिने सुधन्वाको छातीसे लगा गद्गद-कण्ठ होकर कहा—

'प्रिय कुमार! तुम महान् साधु श्रेष्ठ क्षत्रिय वीर हो, तुम्हें धन्य है, मैं तो असाधु ब्राह्मण हूँ, मुझ मूर्खने तुम सरीखे भक्तको उबलते हुए तैलमें गिरवाया। मैं समझ गया, संसारमें उसी मूढ़को नित्य-सन्ताप, अभाव और दुःखोंकी प्राप्ति होती है जो भगवान्

श्रीकृष्णका स्मरण नहीं करता। जो भाग्यवान् पुरुष सर्वकाम-फलदाता भगवान् गोविन्दका स्मरण करते हैं वे तो तीनों तापोंसे छूटकर सर्वथा सुखी हो जाते हैं—

ये स्मरन्ति च गोविन्दं सर्वकामफलप्रदम्।
तापत्रयविनिर्मुक्ता जायन्ते दुःखवर्जिताः॥

अग्निमें इतनी शक्ति कहाँ है जो तुम सरीखे परम वैष्णवको जला सके। जिन सुरासुर-गुरु भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन मुनियों-को भी दुर्लभ है, जिन्होंने अग्नि-शिखासे एक दिन भक्त प्रह्लाद-की रक्षा की थी, तुमने प्राणान्तके समय उन्हींका मन-वाणीसे स्मरण कर लिया। हे पुरुषसिंह! तुम्हारे शरीरका स्पर्श प्राप्तकर आज मेरा यह अधम शरीर भी पवित्र हो गया। पवित्र होनेका इससे श्रेष्ठ और कोई उपाय नहीं है। तीर्थ भी भक्तोंके द्वारा ही तीर्थत्वको प्राप्त होते हैं। महाराज युधिष्ठिरने विदुरसे कहा था—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भागवत १।१३।१०)

'हे प्रभो! तुम जैसे भगवद्भक्त स्वयं ही तीर्थरूप हैं। पापियोंके द्वारा कलुषित तीर्थ तुम सरीखे भक्तोंके ही द्वारा पुनः तीर्थत्वको प्राप्त होते हैं, क्योंकि तुम्हारे हृदयमें गदाधर भगवान् सर्वदा स्थित रहते हैं।' कहा है—

अक्ष्णोः फलं त्वादृशदर्शनं हि
तन्वाः फलं त्वादृशगात्रसङ्गः।
जिह्वाफलं त्वादृशकीर्त्तनं हि
सुदुर्लभाः भागवता हि लोके॥

तुम जैसे भक्तोंके दर्शनमें ही आँखोंकी सफलता है, तुम जैसे भक्तोंके अंगस्पर्शमें ही शरीरकी सफलता है और तुम जैसे भक्तोंके गुण-गानमें ही जीभकी सफलता है, क्योंकि संसारमें भक्तोंके दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं।

अतएव—

राजानं राजपुत्रांश्च सैन्यं पावय सुव्रत।
उत्तिष्ठ वत्स तैलात्त्वं मां समुद्धर भूपज॥
कृष्णोऽयं पाण्डवस्यार्थे सारथ्यं प्रकरोति च।
अर्जुनेनाद्य संग्रामं कुरु वीर यथोचितम्॥

हे पवित्र राजकुमार! हे वत्स! उठ खड़ा हो। तैलसे बाहर निकलकर अपने पिता, तीनों बड़े भाई और सारी सेनाको पावन कर, साथ ही मेरा भी उद्धार कर। हे वीर! भगवान् श्रीकृष्ण जिस अपने भक्त अर्जुनका सारथिपन करते हैं, उस अर्जुनके साथ रणाङ्गणमें यथायोग्य युद्ध कर!

मुनिके साथ सुधन्वा बाहर निकलकर पिताके पास आये। मुनिने सुधन्वाके भक्तिभाव तथा अमित प्रभावकी राजाके सामने

बड़ी प्रशंसा की। राजाने पुत्रको हृदयसे लगा लिया और गद्गद् कण्ठसे कल्याणाशीर्वाद देते हुए युद्धके अनुपम अतिथि अर्जुनका यथोचित सत्कार करनेकी आज्ञा दी।

पितृ-आज्ञा प्राप्तकर सुधन्वा सुन्दर रथपर सवार होकर तुरन्त युद्धस्थलमें जा पहुँचे। दोनों ओर भाँति-भाँतिके रणवाद्य बज उठे। शंखोंकी तुमुल ध्वनि होने लगी। वाद्यों और रथ घोड़े तथा हाथियोंके गर्जनसे पृथ्वी काँप उठी। भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। पाण्डवोंकी ओर महावीर अर्जुनके नेतृत्वमें अपार सेनासहित श्रीकृष्णात्मज प्रद्युम्न, कर्णपुत्र वृषकेतु, कृतवर्मा, सात्यकि, अनुशाल्व आदि प्रसिद्ध वीर हैं। इधर सुधन्वाके नेतृत्वमें राजा हंसध्वजकी विपुल वाहिनी है। श्रीकृष्ण-भक्त-वीर क्षत्रिय-कुमार सुधन्वाने क्रमशः वृषकेतु, प्रद्युम्न, कृतवर्मा, सात्यकि और अनुशाल्व आदि सभी वीरोंको पराजय प्रदान कर दी। महासंग्रामके अनन्तर सबको हार मानकर या घायल होकर रणक्षेत्रसे हट जानेके लिये बाध्य होना पड़ा। अन्तमें स्वयं अर्जुन सामने आये। दोनों ही ओर भगवान्के अनन्य भक्त और अजेय योद्धा हैं। भेद इतना ही है कि अर्जुन बड़े बड़े युद्धोंके अनुभवी वीर हैं, सुधन्वा अभी नवीन रणबाँकुरे हैं। अर्जुनको अपनी भक्ति और वीरताका कुछ दर्प है, सुधन्वा सर्वथा भगवान्के भरोसेपर हैं। इसीसे आज भगवान् यह प्रत्यक्ष दिखला देना चाहते हैं कि न तो भक्तिका

कोई ठेकेदार है और न वीरताका ही। सबसे बड़ी बात यह दिखलानी है, कि भगवान् श्रीकृष्णके सहायक और साथी न रहनेपर अर्जुन एक बालकसे भी रणमें हार सकते हैं।

अर्जुनने सुधन्वाके सामने आते ही उनसे कहा—'वीर सुधन्वा! मैंने बड़े बड़े युद्धोंमें विजय प्राप्त की है। महावीर गुरु द्रोण, पितामह भीष्म, कुलगुरु कृपाचार्य और महात्मा कर्णके साथ भी मैंने युद्ध किया है। भगवान् शिव तथा बड़े बड़े दैत्यों-से भी मैं संग्राममें जूझा हूँ परन्तु तेरे समान रणशूर मुझे कहीं नहीं मिला। मुझे तुझको देखकर जितना आश्चर्य हुआ, उतना और कहीं नहीं हुआ—'*तथा न विस्मयो जातो यथा त्वां वीक्ष्य जायते।*'

सुधन्वा बोले, 'वीरवर! पहलेके युद्धोंमें आपके परम हितकारी भगवान् श्रीकृष्ण बड़ी सावधानीसे रथपर बैठे हुए सारथिका काम करते थे। आज आप श्रीकृष्ण-विहीन हैं, इससे आपको आश्चर्य हो रहा है। आपने श्रीकृष्णको कैसे त्याग दिया है? कहीं श्रीकृष्णने तो मेरे साथ युद्ध करनेमें आपको नहीं छोड़ दिया? बतलाइये, आप मुझसे युद्ध करनेमें समर्थ हैं या नहीं।' सुधन्वाके वचन सुनकर अर्जुनने क्रोधित हो उनपर बाणवर्षा आरम्भ की, सुधन्वाने हँसते हुए बातकी बातमें उनके

सारे दिव्य-बाणोंको काट डाला—'सुधन्वा ताञ्छरान् दिव्यांश्चिच्छेद प्रहसन्निव ।'

बड़ा भयानक युद्ध हुआ । अर्जुनने अपनी सारी कुशलता-से काम लिया, परन्तु सुधन्वाके सामने एक भी नहीं चली । वीर-भक्त-बालक सुधन्वाकी युद्ध-निपुणता और अनवरत बाणवर्षा-से अर्जुन घबरा उठे, उनका सारथि हत होकर गिर पड़ा । अर्जुनको व्याकुल और सारथि-रहित देखकर सुधन्वाने हँसते हुए कहा—

शरैः क्षतोऽसि पार्थ त्वं पौरुषं क्व गतं च ते ।
सर्वज्ञं सारथिं त्यक्त्वा प्राकृतः सारथिः कृतः ॥
स्मर स्वसूतकृष्णाख्यं ममाग्रे पतितो ह्यसि ॥

'हे पार्थ ! आप मेरे बाणोंसे घायल हो गये हैं, आज आपका पुरुषार्थ कहाँ चला गया ? वीरवर ! आपने अपने सर्वज्ञ सारथिको छोड़कर बदलेमें साधारण सारथिकी नियुक्ति कर बड़ी भूल की है । आप मेरे सामने युद्धमें गिर पड़े हैं, अतएव शीघ्र अपने श्रीकृष्ण-नामक सारथिका स्मरण कीजिये ।'

अर्जुनने अपने बायें हाथसे धनुषसहित घोड़ोंकी लगाम पकड़कर लड़ना शुरू किया और मन-ही-मन अपने जीवनाधार-जगदाधार श्रीकृष्णका आर्त्तभावसे स्मरण किया । स्मरण करनेमात्र-की देर थी ! तुरन्त भगवान् श्रीकृष्ण रथपर बैठे, अर्जुनसे यह कहते

हुए दिखायी दिये कि 'भाई! घोड़ोंकी लगाम छोड़ दो'—'मुञ्च चाश्वानर्जुने व्याजहार वचो हरिः।'

भगवान् वासुदेवको समागत देखकर अर्जुन और सुधन्वा दोनोंने ही प्रणाम किया। अर्जुनको तो हर्ष होना स्वाभाविक ही था परन्तु सुधन्वाके हर्षका रंग कुछ दूसरा ही है। जिस कार्यके लिये माता पिताकी आज्ञा और प्रियापत्नीके परामर्शसे रणक्षेत्रमें आकर अर्जुनको छकाया था, वह शुभ कार्य तो अभी सम्पन्न हुआ है। भगवान्‌की दिव्य रूप-माधुरी और उनकी अतुलनीय भक्त-वत्सलताको देखकर सुधन्वा कृतार्थ हो गये। सुधन्वाने मन-ही-मन बारम्बार प्रणामकर भगवान्‌की प्रेरणाके अनुसार प्रकाश्यमें भगवान्‌से कहा—

दृष्टस्त्वमसि गोविन्द! पाण्डवार्थे समागतः।
सर्वगत्वं मया ज्ञातं त्वदीयं किल केशव॥

'हे गोविन्द! अर्जुनके लिये पधारनेवाले आपके दर्शन मैंने कर लिये। हे केशव! मैं आपकी सारी बातें जानता हूँ।' इशारेसे भगवान्‌के प्रति गूढ़ शब्दोंमें इतना-सा कहकर मुस्कुराते हुए सुधन्वाने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! आपके सारथि श्रीकृष्ण आ गये हैं, अब तो मुझपर विजय प्राप्त करनेके लिये आप कोई प्रतिज्ञा करें।' इन शब्दोंसे अर्जुनको मानो यह समझाया कि श्रीकृष्ण केवल तुम्हारे ही सारथि नहीं हैं, मेरे भी सर्वस्व हैं। तुम्हारी

प्रतिज्ञाके लिये अपना पुण्य देकर तुम्हारी रक्षा करेंगे तो मेरी प्रतिज्ञा-की रक्षा केवल संकल्पसे ही कर देंगे । आज जगत्-भगवान्की यह लीला भी देखेगा ।

सुधन्वाकी ललकार सुन अर्जुनने तीन बाण निकालकर प्रतिज्ञा करते हुए कहा कि 'इन तीनों बाणोंसे तेरे सुन्दर मस्तकको नीचे गिरा दूँगा । यदि मैं ऐसा न कर सकूँ तो मेरे पूर्वज पुण्यहीन होकर नरकमें गिर पड़ें । मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है ।' अर्जुनकी प्रतिज्ञाको सुनकर मरणोन्मत्त भक्तवर वीर सुधन्वाने भी हाथ उठाकर घोषणा की कि 'श्रीकृष्णके सम्मुख ही मैं आपके इन तीनों बाणोंको काट डालूँगा । मैं यदि ऐसा न कर सकूँ तो मुझे घोर गतिकी प्राप्ति हो ।' दोनों ओर ही परस्पर-विरोधी प्रतिज्ञाएँ हो गयीं । दोनों ही महावीर और भगवान्के अनन्य भक्त हैं । दोनों ओरकी सेनाके सभी वीर तथा समस्त देवता एवं ऋषिगण इस आश्चर्यको देखनेके लिये उत्कण्ठित हो उठे ।

सुधन्वाने बाण-वर्षासे श्रीकृष्णसहित अर्जुनको घायल करके रथ कुछ तोड़ डाला और बाणोंके कौशलसे वह रथको चक्रके समान घुमाने लगे । तदनन्तर दस बाणोंसे अर्जुनको ढककर एक ऐसा बाण मारा, जिससे अर्जुनका रथ चार सौ हाथ पीछे हट गया । यह देख-कर भगवान्ने अर्जुनसे कहा, "भाई ! तुमने सुधन्वाका पुरुषार्थ देखा ? कैसा बाँका वीर है । तुमने मुझसे बिना ही परामर्श किये

ऐसी कठिन प्रतिज्ञा करके अच्छा काम नहीं किया। जयद्रथ-वधमें कितना कष्ट हुआ था, क्या उस घटनाको तुम भूल गये? जिस वीरने तुम्हारे पैरोंके बलसे दवे हुए रथको एक ही बाणसे चार सौ हाथ पीछे हटा दिया, उसके सामने तुम कैसे जीत सकते हो? मेरी समझसे यह सुधन्वाके आत्यन्तिक 'एक-पत्नी-व्रत'का महत्त्व है। इस एक-पत्नी-व्रतमें मैं और तुम दोनों ही वहुत पिछड़े हुए हैं। ऐसी स्थितिमें महान् कष्ट होना निश्चित ही है।'

अर्जुनने कहा, 'हे गोविन्द! जब आपका शुभागमन हो गया है तब मुझे क्या भय है? मैं निश्चय ही इन तीन बाणोंसे सुधन्वाको रणभूमिमें गिरा दूँगा। अब मेरे लिये महाकष्टकी कोई भी सम्भावना नहीं है। जहाँ आपके हाथमें मेरे जीवन-रथकी लगाम है, वहाँ मेरा कोई कैसे अनिष्ट कर सकता है?' अर्जुनने पहला बाण हाथमें लिया, तब सुधन्वाने पुकारकर कहा—'गोविन्द! जिस प्रकार गोकुलमें गायोंकी रक्षाके लिये आपने गोवर्द्धन हाथपर उठा लिया था उसी प्रकार आज अपने भक्त अर्जुनकी रक्षा कीजिये। परन्तु स्मरण रहे, मैं भी आपका ही दासानुदास हूँ।' भगवान्‌ने भक्त सुधन्वाकी कीर्त्तिपताकाको चिरकालतक स्थायीरूपसे फहरने देने तथा भक्त अर्जुनकी रक्षाके

लिये अपना गोवर्द्धनधारणका पुण्य वाणके साथ संयुक्त कर दिया। कालाग्निके समान अर्जुनका वाण चला, परन्तु पुण्यात्मा भक्त-वर सुधन्वाने क्षणभरमें उसे वीचमें ही काट डाला। राजा हंसध्वज सेनासमेत प्रसन्न हो गये। पार्थ-वाणके कटते ही पृथ्वी काँपने लगी। देवता आश्चर्यमें डूब गये। भगवान्‌ने सुधन्वाके वल-पौरुष और प्राण-रक्षा-कार्यकी प्रशंसा करते हुए अर्जुनको दूसरा वाण सन्धान करनेकी आज्ञा दी और साथ ही अपने अन्य अनेक पुण्य अर्पण कर दिये। सुधन्वाने कहा, 'गोविन्द! धन्य है तुम्हारी लीला! पर याद रहे, यह तुम्हारा दास भी तुम्हारी लीलाओंसे अपरिचित नहीं है।' फिर अर्जुनसे कहा कि 'पार्थ! श्रीकृष्णका स्मरण करके वाण छोड़िये।' अर्जुनका प्रलयकारी भयानक वाण चला परन्तु वीर सुधन्वाने अपने प्रवल-पुरुषार्थसे उसको भी वीचमें काट डाला। दूसरे वाणके कटते ही अर्जुन कुछ उदास हो गये और रणभूमिमें हाहाकार मच गया। चारों ओर सुधन्वाके वीरत्वकी प्रशंसा होने लगी। तदनन्तर भगवान्‌ने तीसरा वाण सन्धान करनेकी आज्ञा दी और अपने रामावतारका पुण्य वाणके अर्पण कर दिया। वाणके पिछले भागमें ब्रह्माजी तथा वीचमें कालको जोड़कर नोकमें स्वयं स्थित हो गये, सुधन्वाने कहा—'भगवन्! तुम मेरा वध करनेके लिये वाणमें स्वयं स्थित

हुए हो, यह मैं जान गया हूँ। आओ नाथ! मुझे रणभूमिमें अपने चरणोंका आश्रय देकर कृतार्थ करो। मैं तो यही चाहता था। इससे बड़ा सौभाग्य मेरे लिये और कौन-सा होगा? अर्जुन! आपको धन्य है जो साक्षात् नारायण आपके लिये केवल अपना पुण्य ही नहीं देते प्रत्युत स्वयं बाणमें स्थित होते हैं। आपका निश्चय ही कल्याण होगा। परन्तु सावधान! श्रीकृष्णकी कृपासे मैं आपके बाणको अवश्य ही काट दूँगा।' अर्जुनका बाण चला परन्तु वीरवर सुधन्वाने श्रीकृष्णका जप करते हुए तुरन्त ही उसे काट डाला। सुधन्वाके द्वारा कटे हुए बाणका आधा भाग पृथ्वी-पर गिर पड़ा। इस बाणके कटते ही सारा चन्द्रमण्डल काँप गया। भक्त सुधन्वाके प्रणकी रक्षा हुई। अब अर्जुनके प्रणकी रक्षा होगी, अतएव भगवत्प्रेरणासे बाणका आधा भाग ऊपरको उठा और उसने सुधन्वाके प्रकाशयुक्त कुण्डलवाले पुरुषार्थके भण्डार सुन्दर मस्तकको तुरन्त धड़से अलग कर दिया।

सुधन्वाके मस्तकहीन कबन्धने पाण्डवसेनाको तहस नहस कर डाला और उनका भाग्यवान् सिर आनन्दके साथ केशव, राम, नृसिंह, आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करता हुआ श्रीकृष्णके जगत्पावन चरणकमलोंमें गिर पड़ा।

तच्छिन्नं त्वरितं प्राप्तं शिरः कृष्णपदाम्बुजम् ।
जयत्केशव रामेति नृसिंहेति मुदा युतम् ॥

भगवान्‌ने चरणोंमें पड़े हुए सुन्दर सिरको प्रेमसे अपने दोनों हाथोंमें उठा लिया । इतनेमें ही वीरबालक सुधन्वाके मुखसे एक तेजकी ज्योति निकली और सबके देखते देखते वह तुरन्त ही श्रीकृष्णके मुखमें प्रवेश कर गयी । इस घटनाको किसीने नहीं जाना ।

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यां सुमुखं पश्यता तदा ।
मुखाद्विनिर्गतं तेजः प्रविष्टं केशवानने ॥
सुधन्वनोति सत्त्वस्य कृष्णो जानाति नेतरः ॥

बोलो भक्त और उनके प्यारे भगवान्‌की जय !

भक्त मोहन और गोपाल भाई

मोहन

एक छोटेसे गाँवमें एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी, ब्राह्मणी अत्यन्त दरिद्रा थी, उसके एक छोटे-से पुत्रके अतिरिक्त कोई भी अपना नहीं था। ब्राह्मणीको दो चार भले घरोंमें भीख माँगनेसे जो कुछ मिल जाता, उसीसे वह अपना और अपने शिशु पुत्र मोहनका उदर-निर्वाह करती। किसी दिन यदि बहुत कम भीख मिलती तो ब्राह्मणी स्वयं भूखी रहकर बच्चेको ही कुछ खिलाकर उसे हृदयसे लगा सन्तोषसे सो जाती। गाँवमें ऐसे लोग भी थे, जिनकी अवस्था बहुत अच्छी थी, परन्तु गरीब असहाया ब्राह्मणीकी किसीको कोई परवा न थी। महलोंमें रहनेवाले अमीरोंको बुरी तरहसे अनाप-शनाप वस्तुएँ पेटमें भरते रहनेके कारण मन्दाग्नि हुई रहती है, उन्हें पूरासा अन्न भी पचता नहीं, परन्तु गरीबोंकी दशाका ध्यान उन्हें क्यों होने लगा? देशमें न मालूम कितने असहाय और गरीब नर-नारी भूखकी ज्वालासे तड़प-तड़पकर मर जाते हैं, उनकी दशापर कौन दृष्टिपात करता है? पर जिसके कोई नहीं होता, उसके भगवान् होते हैं, वह विश्वम्भर किसी तरह गरीबकी

टूटी झोंपड़ीमें भी उसका पेट भरनेके लिये कुछ दाने जरूर पहुँचा देते हैं!

ब्राह्मणीके बालक मोहनकी उम्र छः वर्षकी हो गयी। ब्राह्मण-सन्तान है, कुछ पढ़ाना ही चाहिये, परन्तु किस तरह पढ़ाया जाय? गाँवके अधिकांश लोगोंकी दृष्टिमें तो ब्राह्मणी गरीब होनेके कारण घृणास्पद थी! ब्राह्मणीने समीपके एक दूसरे गाँवमें मोहनके पढ़ानेका प्रबन्ध किया। एक दिन वह उसको साथ ले दूसरे गाँवके गुरुजीके पास जाकर रोने लगी, गुरुजीको दया आ गयी, उन्होंने बालकको पढ़ाना स्वीकार किया। मोहन पढ़नेके लिये जाने लगा। गाँव दो कोस था, परन्तु दरिद्रा ब्राह्मणीके बालकके लिये सवारी कहाँसे आती? मोहन पैदल ही आया जाया करता! यद्यपि उस समय गुरुके घरोंमें बालकोंके रहनेकी प्रथा थी परन्तु मोहन बहुत छोटा होनेके कारण न तो वह गुरुगृहमें रहना ही चाहता और न माताको ही रातके समय अपने इकलौते बच्चेको आँचलमें छिपाकर सोये बिना चैन पड़ती! रास्तेमें थोड़ी-सी दूर सुनसान जङ्गल पड़ता था। मोहनको उसीमेंसे होकर जाना पड़ता। सुबह सूर्योदयके समय ही वह जाता और सन्ध्याको लौटते लौटते अंधेरा छा जाता। इससे मोहनको जङ्गलमें बड़ा डर लगता!

एक दिन गुरुके घर कोई उत्सव था, इससे मोहनको वहाँसे लौटनेमें कुछ देर हो गयी। कृष्णपक्षके कारण जंगलमें अन्धकार

घना हो गया था, मोहन रास्तेमें बहुत डरा, जंगली पशुओं और सियारोंकी आवाज सुनकर वह थरथर काँपने लगा। ब्राह्मणी भी देर होनेके कारण उसको ढूँढ़ने चली गयी थी, डरते काँपते हुए अपने लालको गोदी लेकर घर ले आयी। मोहनने कुछ शान्त होने पर मातासे कहा, 'माँ! मैं रोज जंगल होकर आता जाता हूँ, मुझे वहाँ बहुत डर लगता है, आज तू नहीं पहुँचती तो न मालूम मेरी क्या दशा होती? दूसरे लड़कोंके साथ तो उनके नौकर जाते हैं, जो उन्हें सँभालते हैं, क्या मेरे लिये एक नौकर नहीं रक्खोगी?' बालककी सरल वाणी सुनकर अपनी दरिद्रताका ध्यान आते ही ब्राह्मणीकी आँखें डबडबा आयीं। ब्राह्मणीने बहुत धीरज रक्खा परन्तु शेषतक रख नहीं सकी, वह रोकर कहने लगी, 'बेटा! अपने दुःखकी दशा तुझको कैसे सुनाऊँ, हम लोग बहुत ही गरीब हैं, तेरे लिये नौकर रखनेको मेरे पास पैसा कहाँ है?' माँकी आँखोंमें आँसू देखकर मोहन भी रो पड़ा, उसने कहा, 'माँ, तू रोती क्यों है? तुझे रोते देखकर मुझे भी रोना आता है। माँ, क्या हमारे और कोई नहीं है?' मोहनके सरल मर्मभेदी प्रश्नसे ब्राह्मणीका हृदय व्यथासे भर गया, पृथ्वी मानो पैरोंके नीचेसे खिसकने लगी, धीरज छूटने लगा, परन्तु उसे तुरन्त यह खयाल आया कि 'ईश्वर तो अनाथनाथ हैं, क्या वह हमारे नहीं हैं? यह स्मृति होते ही ब्राह्मणीके हृदयमें बल आगया, आँसू

अकस्मात् सूख गये, वह कहने लगी, 'बेटा ! हैं क्यों नहीं, गोपाल है !' बच्चेने पूछा, 'माँ, गोपाल मेरे क्या लगते हैं ।' स्नेहमयी ब्राह्मणीके मुँहसे निकल गया, 'बेटा ! गोपालभाई तेरा बड़ा भाई हैं ।' बालकने कहा, 'माँ ! वह कहाँ रहते हैं ? मैंने तो उन्हें कभी नहीं देखा !' ब्राह्मणीका हृदय भगवत्-प्रेमसे भर गया था। जब मनुष्य सब ओरसे सर्वथा निराश होकर भगवत्की शरणागतिपर विश्वासकर उसीकी ओर ताकता है, तब उसे तुरन्त ही उधरसे आश्वासन और आश्रय मिल जाता है, उस अव्यक्त आश्रयको प्राप्त करते ही उसके हृदयमें बल, बुद्धि, तेज और ज्ञानका विकास स्वयमेव होने लगता है । भगवत्-प्रेमसे हृदय भर जाता है । ब्राह्मणी मानो निर्भ्रान्त चित्तसे कहने लगी—

'बेटा ! मेरा वह गोपाल सभी जगह है, जल-स्थल, अनल-अनिल, आकाश-पाताल, फल-फूल, समुद्र-सरिता सभीमें वह रहता है । जगत्में ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ वह न हो । परन्तु वह सहजमें दीखता नहीं है, जब उसे देखनेके लिये कोई बहुत ही व्याकुल होता है, तभी वह दीखता है । एक समय वृन्दावनमें गोपबालाओंके व्याकुल होनेपर उन्हें वह दीख पड़ा था, एक बार पाँच वर्षके बालक ध्रुवको दिखायी दिया था । जो एक बार उसे देख लेता है, वह तो उसकी सुन्दरता और स्वभावपर सदाके लिये मोहित हो जाता है !'

मोहन–माँ, मेरा गोपालभाई कभी अपने घर नहीं आता?

ब्राह्मणी–आता नहीं क्यों? वह तो सदा यहीं रहता है?

मोहन–क्या तुमने उसे कभी देखा है?

ब्राह्मणी–ना! मैंने उसे नहीं देखा, मैं उसके लिये कभी व्याकुल नहीं हुई। परन्तु मैं जानती हूँ कि व्याकुल होनेपर वह अवश्य दर्शन देता है!

मोहन–तो तू व्याकुल क्यों नहीं होती? ऐसे सुन्दर रूप और सुन्दर स्वभाववालेको देखे विना तुझसे कैसे रहा जा सकता है माँ? मैं तो उसे देखे विना नहीं रहूँगा। मुझे बता, मैं उसके लिये कैसे व्याकुल होऊँ?

ब्राह्मणी–बेटा! जैसे भूख लगनेपर तू भोजनके लिये व्याकुल होता है, जैसे प्यास लगनेपर जलकी पुकार मचाने लगता है, जैसे आज जंगलमें तू मुझे पानेके लिये घबरा रहा था। ऐसे ही व्याकुल होकर पुकारनेसे वह अवश्य आता है। उस दिन मैंने तुझको एक कहानी सुनायी थी न, क्या तू उसे भूल गया? पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदीको जब दुष्ट दुःशासन सभामें नंगी करने लगा, तब उसने व्याकुल होकर पुकारा था, उसकी पुकार सुनते ही मेरा गोपाल वहाँ आगया था।

मोहन–क्या वही मेरा गोपालभाई है?

ब्राह्मणी–हाँ बेटा, वही है। पुकारते ही वह आता है और सारे सङ्कटोंको हर लेता है।

मोहन–तो माँ, मैं क्या करूँ? कैसे पुकारूँ?

ब्राह्मणीने अटल विश्वासके साथ कहा, 'सुन! तू जिस जंगलसे होकर जाता है, उसी जंगलमें तेरा गोपालभाई रहता है। उसे हृदयसे पुकारना, तेरी व्याकुल पुकार सुनते ही वह आकर तेरे साथ हो जायगा!'

सरल विश्वासी बालकने दूसरे दिन वनमें प्रवेश करते ही इधर-उधर ताककर पुकारा 'भाई! गोपाल भाई!! तुम कहाँ हो? आओ, मुझे डर लगता है?' बालकको सुनायी दिया, मानो कोई कह रहा है. 'हाँ, यहीं हूँ, आया!' मीठी आवाज सुनते ही बालकको ढाढ़स हो गया, उसका भय भाग गया, कुछ ही दूर चलनेके बाद उसने देखा कि उसीकीसी उम्रका एक छोटा नयन-मनहारी सुकुमार श्यामसुन्दर ग्वालबालक वनके वृक्षसमूहोंमेंसे निकलकर उसके साथ खेलने लगा, प्यारसे बातचीत करने लगा और हाथ पकड़कर साथ साथ चलने लगा। गोपालके आते ही मोहनका सारा दुःख दूर हो गया। मोहनने घर आकर मातासे सारा हाल सुना दिया। ब्राह्मणी भगवान्‌की दया समझकर रो पड़ी! उसने सोचा 'जिस दयामयने बालक ध्रुवकी पुकार सुनकर उसे दर्शन दिया था, वही मेरे बच्चे-की पुकारपर आगया हो तो क्या आश्चर्य है।'

कुछ समय बाद गुरुके पिताका देहान्त हो गया, श्राद्धका आयोजन हुआ। श्राद्धके लिये सभी विद्यार्थी गुरुजीको कुछ न कुछ भेट देंगे। ब्राह्मणीके मोहनने भी सरलतासे गुरुजीसे पूछा, 'गुरुजी! मुझे क्या आज्ञा देते हैं, मैं क्या लाऊँ?' गुरु महाराज को ब्राह्मणीकी अवस्थाका पता था, उन्होंने कहा 'बेटा! तुझको कुछ भी नहीं लाना होगा।' उसने कहा 'नहीं गुरुजी! जब सभी लड़के लावेंगे तब मुझे भी कुछ लानेकी आज्ञा दीजिये।' बालकके बार बार आग्रह करनेपर गुरु महाराजने कह दिया, 'एक लोटा दूध ले आना।' मोहन सन्तुष्ट होकर घर चला आया। उसने मातासे कहा, 'माँ, कल गुरु महाराजके पिताका श्राद्ध है, सभी लड़के कुछ-न-कुछ सामान ले जायँगे। मुझे गुरुजीने सिर्फ एक लोटा दूध ही ले जानेके लिये कहा है, अतएव तुम कुछ दूध खरीद लाना।' ब्राह्मणीका घर तो मानो दरिद्रताका निवास-स्थान था। अश्वत्थामाकी माताको भी एकदिन बच्चेको भुलानेके लिये दूधके बदले आटा मिले हुए पानीसे काम निकालना पड़ा था। ब्राह्मणी बोली, 'बेटा, घरमें तो एक कानी कौड़ी भी नहीं है, दूध कहाँसे लाऊँगी? माँगकर लानेके लिये छोटी-सी लुटिया भी तो घरमें नहीं है!' मोहनने रोकर कहा, 'माँ, तब क्या होगा! मैं गुरुजीको मुँह कैसे दिखलाऊँगा?' माताने दृढ़ भरोसेसे कहा, 'बेटा! गोपालभाईसे कहना, वह चाहेगा तो दूधका प्रबन्ध अवश्य कर देगा!' बालक प्रसन्न हो गया। प्रातःकाल गुरुके

घर जाते समय जंगलमें सदाकी भाँति ज्यों ही उसे गोपालभाई मिले, त्यों ही मोहनने कहा 'भाई! आज मेरे गुरुजीके पिताका श्राद्ध है, उन्होंने एक लोटा दूध माँगा है, माँने कहा है कि गोपालभाईसे कहना, वह तुझे ला देगा। सो भाई, मुझे अभी दूध लाकर दो!' गोपाल बड़े प्यारसे बोले, 'भाई! मुझे पहलेसे ही इस बातका पता है, देखो, मैं दूधका लोटा भरकर साथ ही लाया हूँ, तुम इसे ले जाओ।' मोहनने गोपालभाईसे दूधका लोटा ले लिया। आज उसके आनन्दका पार नहीं है। सफलतापर किसे आनन्द नहीं होता। राज्यके पिपासुको जो आनन्द राज्यकी प्राप्ति होनेपर होता है, वही आनन्द एक बच्चेको मनचाहा मामूली खिलौना मिलनेसे होता है। वास्तवमें खिलौने दोनों ही हैं। यथार्थ आनन्द न राज्यमें है और न मामूली खिलौनेमें है, वह तो अपने अन्दर ही है, जो मनोरथ पूर्ण होनेपर मनमें एक बार बिजलीकी तरह चमक उठता है और दूसरा मनोरथ उत्पन्न न होनेतक झलमलाता रहता है। पर यहाँ तो गोपालके दिये हुए दूधकी प्राप्तिमें कुछ विलक्षण ही आनन्द था। इस आनन्दका स्वरूप वही भाग्यवान् जानता है जिसको भगवत्कृपासे इसकी प्राप्ति होती है! हम लोगोंके लिये तो यह कल्पनासे बाहरकी बात है।

मोहन हँसता हुआ दूधका छोटा-सा लोटा लेकर गुरुजीके समीप जा पहुँचा। लड़कोंकी लाई हुई सामग्रियोंको गुरुजीके

नौकर उनके पास ले जाकर उन्हें दिखा दिखाकर अलग रख रहे थे। बालकने समझा कि मेरे दूधकी भी बारी आवेगी, परन्तु उस क्षुद्र लुटियाकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया। बालकने उदास होकर गुरुजीसे कहा, 'महाराज! मैं भी दूध लाया हूँ।' गुरुजी बड़ी बड़ी सामग्रियोंकी देख-भाल कर रहे थे, उन्होंने बालककी बातका कोई उत्तर नहीं दिया। गरीबोंके श्रद्धा-प्रेमपूरित उपहारका स्वाद तो प्रेमके भूखे भगवान् ही जानते हैं, इससे वही उसका सम्मान भी करते हैं। सुदामाके चावलोंकी कनी, अछूत भिलनीके बेर, करमाकी खिचड़ी और विदुरके शाक-पातके स्वादका अनुभव भगवान्‌को ही था इसीसे उन्होंने प्रसन्नतासे इनका भोग लगाया था और इसीलिये उन्होंने घोषणा की है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता)

'प्रेमी भक्त मुझे शुद्ध प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि जो कुछ भी अर्पण करता है, मैं उस प्रेमार्पित उपहारका प्रेमसहित साक्षात् भोजन करता हूँ।' सामग्रियोंकी बाहुल्यताका कोई महत्त्व नहीं है; महत्त्व है प्रेमका, भगवान् श्रीकृष्णके आतिथ्यके लिये कौरवोंने कम तैयारी नहीं की थी, परन्तु भगवान्‌ने कहा कि—

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥

(महाभारत)

--भोजन या तो प्रेम हो, वहाँ किया जाता है, या विपद् पड़नेपर किसीके भी यहाँ करना पड़ता है। यहाँ प्रेम तो तुममें नहीं है और विपत्ति मुझपर नहीं पड़ी है, इससे मैं तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं करता। --अस्तु !

जब मोहनने कई बार गुरुसे कहा, तब गुरुजीने अवज्ञाके साथ झुँझलाकर एक नौकरसे कहा, 'जरा-सी चीजपर यह छोकरा कितना चिल्ला रहा है, मानो इसने हमें निहाल कर दिया। दूध किसी बर्तनमें लेकर हटाओ इस आफतको जल्दी यहाँसे।' अपमानसे बालकके मुखपर विषादकी रेखा खिंच गयी ! गरीब क्या करता ? रोने लगा !

भगवान्की लीला बड़ी विचित्र है, वह कब किस सूत्रसे क्या करना चाहते हैं, किसीको कुछ भी पता नहीं लगता। नौकरने दूधको कटोरेमें उँड़ेला, कटोरा भर गया पर दूध पूरा नहीं हुआ, उसने एक गिलास उठाया, वह भी भर गया पर दूध ज्यों-का-त्यों रहा, आखिर एक बाल्टीमें डालना आरम्भ किया, वह भी भर गयी ! तब नौकरने घबराकर गुरु महाराजके पास जाकर सारा वृत्तान्त सुनाया, श्राद्धके लिये बहुतसे विद्वान् ब्राह्मण एकत्र हो रहे थे, इस आश्चर्य-घटनाको सुनकर सभी वहाँ दौड़े आये। देखते हैं, एक छोटेसे लोटेमें दूध भरा है। पास ही एक बाल्टी और कई बर्तनोंमें दूध छलक रहा है। गुरुजीने नौकरसे कहा, 'जरा मेरे

सामने तो डालो।' नौकरने एक दूसरे बड़े बर्तनमें लुटियाका दूध उँड़ेलना आरम्भ किया, बर्तन भर गया, पर लुटिया खाली नहीं हुई। फिर दूसरा उससे भी बड़ा बर्तन रक्खा गया, वह भी बातकी बातमें भर गया। दूध मानो द्रौपदीका चीर ही हो गया—

डारत डारत कर थक्यो, चुक्यो न लुटिया-दूध।

तब तो गुरु महाराज और ब्राह्मण-मण्डलीके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, गुरुने पूछा, 'बेटा! तू दूध कहाँसे लाया था?' बालकने सरलतासे कहा, 'मेरा गोपालभाई वनमें रहता है, उसीने मुझे दिया था।' गुरुने कहा, 'बच्चा! गोपालभाई कौन है?'

मोहनने कहा, 'मेरा भाई है, मेरी माँने कहा था कि, तू उससे जो चाहे सो माँग लेना, वह दीनोंका नाथ है, पतितोंको पवित्र करता है, दुखियोंको अपनाता है, निराधारका आधार है, व्याकुल होकर पुकारते ही आता है, जो चाहो सो देता है।'

बालककी बात सुनकर गुरुका हृदय भर आया। गुरुने उठाकर उसे छातीसे लगा लिया, घड़ीभर पहले जिससे घृणा थी, वही अब अत्यन्त आदरका पात्र हो गया! जिसको गोपाल अपनाते हैं, उसे कौन नहीं अपनाता। उल्टे भी सीधे हो जाते हैं। विष भी अमृत बन जाता है।

गरल-सुधा रिपु करय मिताई।
गोपद-सिन्धु अनल सितलाई॥

ब्राह्मण-मण्डली भोजन करनेके लिये बैठी, आज श्राद्धके भोजनमें मोहनके लाये हुए दूधकी खीर बनी थी। खाते-खाते ब्राह्मण अघाते नहीं थे। आजकी खीरका स्वाद कुछ अनोखा ही था। क्यों न हो, जिस प्रसादका एक कण पानेके लिये ब्रह्मादि देव सदा तरसते हैं, वही आज श्राद्ध-भोज्यान्नके रूपमें सबको प्राप्त था। ब्राह्मणोंका मन तो नहीं भरा परन्तु उस महाप्रसादकी प्राप्तिसे वे सुर-मुनि-दुर्लभ पदको पाकर सदाके लिये तृप्त हो गये! ब्राह्मणके पितरोंके तरनेमें तो आश्चर्य ही कौनसा था?

ब्राह्मण-मण्डली बालकको स्नेहार्द्र-हृदयसे आशीर्वाद देकर लौट गयी। अन्तमें गुरुदेवने अपने सब छात्रोंको साथ लेकर भोजन किया। मोहनको भी आज वहीं भोजन करना पड़ा। सन्ध्या हो गयी और सब लड़के अपने अपने घर चले गये। गुरुदेवने गोपालभाईके प्यारे मोहनको रख लिया था। सबके जानेके बाद उससे बोले, 'बेटा! मैं तेरे साथ चलता हूँ, तेरे गोपालभाईके दर्शन मुझे भी जरूर कराने पड़ेंगे।' मोहनने कहा, 'चलिये, अभी मेरे साथ वनमें। मेरा गोपालभाई तो पुकारते ही आता है।' गुरुने बालकको गोदमें उठा लिया और दोनों वनमें पहुँचे। बालकने वहाँ जाते ही पुकारा, 'गोपालभाई! आओ, आज इतनी देर क्यों करते हो?' बदलेमें उसे सुनायी दिया 'आज तो तुम अकेले नहीं हो, फिर मुझे क्यों बुलाते हो?' मोहनने कहा,

'भाई ! मेरे गुरुजी तुम्हें देखना चाहते हैं, जल्दी आओ !' भक्तकी प्रेमभरी पुकार सुनकर भगवान् नहीं ठहर सकते । तुरन्त नव-नील-नीरद श्यामसुन्दर प्रकट हो गये। बालकने कहा, 'भाई ! आगये ! गुरुदेव, देखो तो गोपालभाई कितना सुन्दर है ?' गुरुजीको एक विस्मयजनक प्रकाशके सिवा और कुछ भी नहीं दिखायी दिया । उन्होंने कहा, 'कहाँ है ? मुझे तो इस उजियालेके सिवा और कुछ भी नहीं दीखता ।' बालकने कहा, 'यह क्या बात है ? गोपालभाई ! तुम यह क्या खेल कर रहे हो ?' उत्तर मिला, 'भाई ! मैं तुम्हारे पास आता हूँ, तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध है, उसमें प्रेम भरा है, तुम्हारा साधन-समय पूर्ण हो गया है, परन्तु तुम्हारे गुरुदेव अभी दर्शनके अधिकारी नहीं हुए। इन्होंने जो प्रकाश देखा है, वही इनके लिये बहुत है । इसीसे यह कल्याण-मार्गपर अग्रसर हो सकते हैं ।' यह वीणा-विनिन्दित वाणी गुरुदेवने भी सुनी, उनके हृदयका रुद्ध-द्वार खुल गया, हृदयकी मायाका बाँध टूट गया, प्रेमका सागर उमड़ पड़ा, गुरुदेव गद्गद् होकर बोले, 'नाथ ! तुम्हारे दिव्य प्रकाशने मेरे हृदयके घोर अन्धकारको हर लिया और तुम्हारी वाणीने मुझे तुम्हारे दिव्य धामके दर्शन करा दिये । अब मैं हृदयमें तुम्हें देख रहा हूँ । प्रभो ! मैं यही चाहता हूँ कि मेरी सदा यही दशा बनी रहे ।' मोहन महान् आनन्दसे छका मुसकरा रहा था ।

थोड़ी देरमें गुरुदेवपर भी कृपा हुई। करुणा-वरुणालय, सौन्दर्यकी राशि, प्रेमके भण्डार, उदार-चूड़ामणि, अनूप-रूप-शिरोमणिके प्रत्यक्ष दर्शनकर गुरु महाराज सदाके लिये कृतकृत्य हो गये!

× × × ×

मोहनको साथ लेकर गुरुदेव ब्राह्मणीके पास आये। देखते हैं तो वहाँ 'गोपालभाई' माताकी गोदमें बैठे मानो जननीके स्नेह-सुधाका पान कर रहे हैं। माताको बाह्यज्ञान नहीं है। उसके आनन्दाश्रुओंकी अजस्र धारासे गोपालभाईका समस्त शरीर अभिषिक्त हो गया है! गुरु और शिष्य इस दृश्यको देखकर आनन्दसागरमें डूब गये!*

बोलो भक्तिमती ब्राह्मणी, पवित्र भक्त मोहन और उसके प्यारे 'गोपालभाई' की जय!

* स्वामी श्रीविवेकानन्दजीने लड़कपनमें अपनी धायसे एक कथा सुनी थी, स्वामीजीके शिष्य एम० सी० फर्की महोदय लिखते हैं कि इस कथाका उनके जीवनपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उसी कथाके आधारपर यह गाथा लिखी गयी है।

लेखक
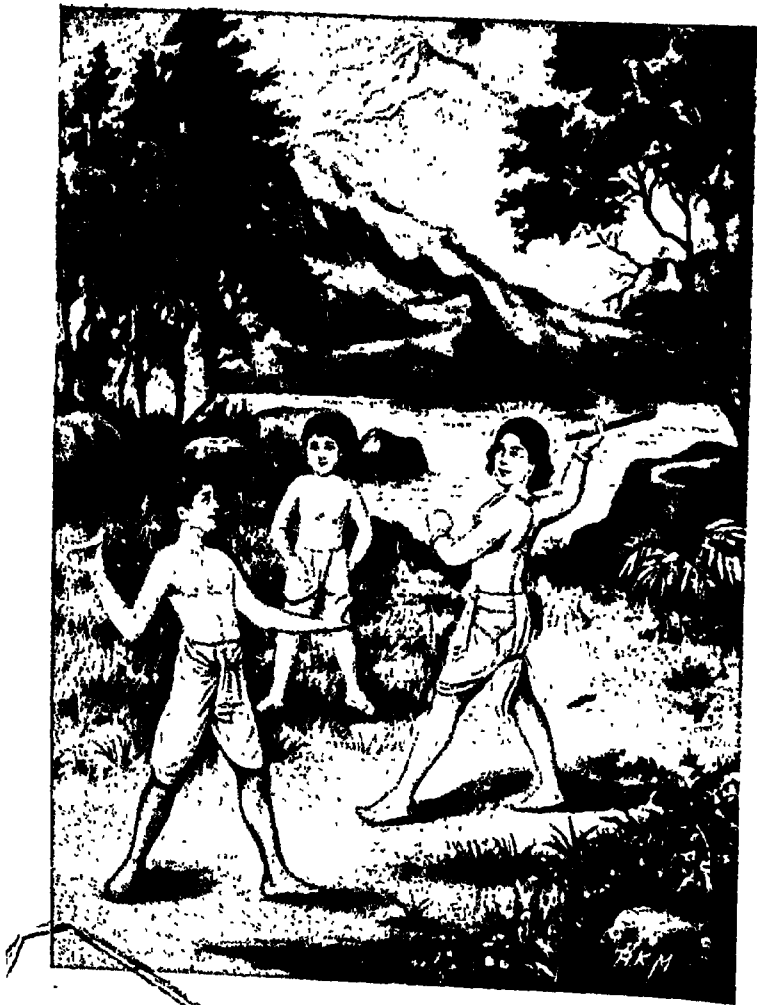
गोविन्दके साथ गोविन्द खेल रहे हैं

गोविन्द

गोवर्धन बड़ा सुन्दर गाँव है। गाँवमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी ही बस्ती अधिक है। गाँवके बीचमें एक मन्दिर है, जिसमें श्रीनाथजी महाराजकी बड़ी ही सुन्दर मूर्ति विराजमान है। उनके चरणोंमें नूपुर, गलेमें मनोहर वनमाला और मस्तकपर मोरमुकुट शोभित हो रहा है। घुँघराले बाल हैं, नेत्रोंकी बनावट मनोहारिणी है और पीताम्बर पहने हुए हैं। मूर्त्तिमें इतनी सुन्दरता है कि देखनेवालोंका मन ही नहीं भरता। मन्दिरके पास ही एक गरीब ब्राह्मणका घर था। ब्राह्मण था गरीब परन्तु उसका हृदय भगवत्-भक्तिके रंगमें रँगा हुआ था। ब्राह्मणी भी अपने पति और पतिके भी परम पति परमात्माके प्रेममें रत थी। उसका स्वभाव बड़ा ही सरल और मिलनसार था, कभी किसीने उसके मुखसे कड़ा शब्द नहीं सुना। पिता-माताके अनुसार ही प्रायः पुत्रका स्वभाव हुआ करता है। इसी न्यायसे ब्राह्मण-दम्पतिका पुत्र गोविन्द भी बड़े सुन्दर स्वभावका बालक था। उसकी उम्र दस वर्षकी थी। गोविन्दके शरीरकी बनावट इतनी सुन्दर थी कि लोग उसे कामदेवका अवतार कहनेमें भी नहीं सकुचाते थे।

गोविन्द गाँवके बाहर अपने साथी सदानन्द और रामदासके साथ खेला करता था। एक दिन खेलते खेलते सन्ध्या हो गयी। गोविन्द घर लौट रहा था तो उसने मन्दिरमें आरतीका शब्द सुना। शंख, घण्टा, घड़ियाल और झाँझकी आवाज सुनकर गोविन्दकी भी मन्दिरमें जाकर तमाशा देखनेकी इच्छा हुई और उसी क्षण वह दौड़कर नाथजीकी आरती देखनेके लिये मन्दिरमें चला गया। नाथजीके दर्शनकर बालकका मन उन्हींमें रम गया। गोविन्द इस बातको नहीं समझ सका कि यह कोई पाषाणकी मूर्ति है। उसने प्रत्यक्ष देखा कि एक जीता-जागता मनोहर बालक खड़ा हँस रहा है। गोविन्द, नाथजीकी मधुर मुसुकान-पर मोहित हो गया? उसने सोचा यदि 'यह बालक मेरा मित्र बन जाय और मेरे साथ खेले तो बड़ा आनन्द हो!' इतनेमें आरती समाप्त हो गयी। लोग अपने अपने घर चले गये। पुजारी भी मन्दिर बन्द करके चले गये। एक गोविन्द रह गया, जो मन्दिरके बाहर अँधेरेमें खड़ा नाथजीकी बाट देखता था। गोविन्दने जब चारों ओर देखकर यह जान लिया कि कहीं कोई नहीं है, तब उसने किवाँड़ोंके छेदसे अन्दरकी ओर झाँककर अकेले खड़े हुए श्रीनाथजीको हृदयकी बड़ी गहरी आवाजसे गद्गद् कण्ठ हो प्रेमपूर्वक पुकार कर कहा, "नाथजी! भैया, क्या तुम मेरे साथ नहीं खेलोगे? मेरा मन तुम्हारे साथ खेलनेके लिये बहुत छटपटा रहा है। भाई आओ, देखो कैसी चाँदनी

रात है, चलो, दोनों मिलकर मैदानमें गुल्लिडंडा खेलें। मैं सच कहता हूँ, भाई! तुमसे कभी झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा।"

सरल हृदय बालकके अन्तःकरणपर आरतिके समय जो प्रभाव पड़ा, उससे वह उन्मत्त हो गया। परमात्माके मधुर और अनन्त प्रेमकी अमृतमयी मलयवायुसे गोविन्द प्रेम-विभोर होकर मन्दिरके अन्दर खड़े हुए उस भक्त-प्राण-धन गोविन्दको रो-रोकर पुकारने लगा। बालकके अश्रुसिक्त शब्दोंने बड़ा काम किया। '*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*" की प्रतिज्ञाके अनुसार नाथजी मन्दिरमें नहीं ठहर सके। भक्तके प्रेमावेशने भगवान्‌को खींच लिया! गोविन्दने सुना, मानो अन्दरसे आवाज आती है—'भाई! चलो, आता हूँ, हम दोनों खेलेंगे।'

सरल बालकका मधुर प्रेम भगवान्‌को बहुत शीघ्र खींचता है। बालक ध्रुवके लिये चतुर्भुजधारी होकर वनमें जाना पड़ा। भक्त प्रह्लादके लिये अनोखा नरसिंह वेष धारण किया और व्रज-बालकोंके साथ तो आप गौ चराते हुए वन-वन घूमे, आज गोविन्दकी मतवाली पुकार सुनकर उसके साथ खेलनेके लिये मन्दिरसे बाहर चले आये! धन्य प्रभु! न मालूम तुम मायाके साथ रमकर कितने खेल खेलते हो। तुम्हारा मर्म कौन जान सकता है? मामूली मायावीके खेलसे ही लोग भ्रममें पड़ जाते हैं, फिर तुम तो मायावियोंके सरदार ठहरे! बेचारी माया तो तुम्हारे भक्त-चञ्चरीक

सेवित चरण-कमलोंकी चेरी है अतएव तुम्हारे खेलके रहस्यको कौन समझ सकता है? इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तुम्हें अपने भक्तोंके साथ खेलना बहुत ही प्यारा लगता है। इसीलिये तुम धन्नाके साथ गायें दुहते फिरे थे और इसीलिये आज बालक गोविन्दके पुकारते ही उसके साथ खेलनेको तैयार होगये!

नाथजी हँसते हुए गोविन्दके पास आकर खड़े हो गये, गोविन्द-ने बड़े प्रेमसे उनका हाथ पकड़ लिया। आज गोविन्दके आनन्दका ठिकाना नहीं है, वह कभी नाथजीके मुखकमलको देखकर मतवाला होता है, तो कभी उनके कोमल-कर-कमलोंका स्पर्श कर अपनेको धन्य मानता है। कभी उनके नुकीले नेत्रोंको निहारकर मोहित होता है तो कभी उनके सुरीले शब्दोंको सुनकर फिर सुनना चाहता है। गोविन्दके हृदयमें आनन्द समाता नहीं! बात भी ऐसी ही है। जगत्‌का समस्त सौन्दर्य जिसकी सौन्दर्य-राशिका एक तुच्छ अंश है उस अनन्त और असीम रूपराशिको प्रत्यक्ष प्राप्त कर ऐसा कौन है जो मुग्ध न हो?

नये मित्रको साथ लेकर गोविन्द गाँवसे बाहर आया। चन्द्रमा-की चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी, प्रियतमकी प्राप्तिसे सरोवरोंमें कुमुदनी हँस रही थी, पुष्पोंकी अर्धविकासित कलियोंने अपनी मन्द-मन्द सुगन्धसे समस्त वनको मधुमय बना रक्खा था। मानो प्रकृति अपने नाथकी अभ्यर्थना करनेके लिये सब तरहसे सज-

धजकर भक्ति-पूरित पुष्पाञ्जलि अर्पण करनेके लिये पहलेसे तैयार थी। ऐसी मनोहर रात्रिमें गोविन्द, नाथजीको पाकर अपने घर-बार, पिता-माता और नींद-भूखको सर्वदा भूल गया। दोनों मित्र बड़े प्रेमसे तरह-तरहके खेल खेलने लगे।

गोविन्दने कहा था कि मैं झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा, परन्तु विनोदप्रिय नाथजीकी मायासे मोहित होकर वह इस बातको भूल गया। खेलते-खेलते किसी बातको लेकर दोनों मित्र लड़ पड़े। गोविन्दने क्रोधमें आकर नाथजीके गालपर एक थप्पड़ जमा दिया और बोला कि 'फिर कभी मुझे खिझाया तो याद रखना, मारते-मारते पीठ लाल कर दूँगा।' सूर्य-चन्द्र और अनल-अनिल जिसके भयसे अपने-अपने काममें लग रहे हैं, स्वयं देवराज इन्द्र जिसके भयसे समयपर वृष्टि करनेके लिये बाध्य होते हैं और भयाधिपति यमराज जिसके भयसे पापियोंको भय पहुँचानेमें व्यस्त हैं। वही त्रिभुवननाथ आज नन्हेंसे बालक-भक्तके साथ खेलते हुए उसकी थप्पड़ खाकर भी कुछ नहीं बोलते! धन्य है।

नाथजी रोने लगे और बोले 'भाई गोविन्द! तुमने कहा था न कि मारूँगा नहीं, फिर मुझे क्यों मारा?' नाथजीकी इस बातको सुनकर और उनको रोते देखकर गोविन्दका कलेजा भर आया, उसने दौड़कर नाथजीके आँसू पोंछ उन्हें अपने गले लगा लिया और बोला, 'भाई! रो मत, तू मुझे बड़ा ही प्यारा लगता

है, तेरी आँखोंमें आँसू देखते ही मेरा कलेजा फटता है।' दोनों फिर खेलने लगे। रात अधिक हो गयी। भगवान्‌ने यह सोचकर कि इसके माता-पिता बड़े चिन्तित होंगे, अपनी मायासे गोविन्द-के हृदयमें घर जानेके लिये प्रेरणा की। गोविन्दने कहा, 'नाथजी! बड़ी देर हो गयी है, मैं घर जाता हूँ, अब कल फिर खेलेंगे।' नाथजीने अनुमति दी! गोविन्द घर चला गया और अनाथोंके एकमात्र नाथ श्रीनाथजी अपने मन्दिरमें चले गये।

प्रतिदिन इसी प्रकार खेल होने लगा। गोविन्द इस नयन-मनमोहन नवीन मित्रको पाकर पुराने दोनों मित्रोंको भूल गया। एक दिन श्रीनाथजी महाराज खेलते-खेलते गोविन्दको दाँव न देकर भागे। गोविन्द भी पीछे-पीछे दौड़ा। नाथजी महाराज मन्दिरमें जाकर घुस गये। मन्दिरका द्वार बन्द था, अतएव गोविन्द अन्दर नहीं जा सका, नाथजीका अन्याय समझकर वह मन्दिरके बाहर खड़ा होकर उन्हें प्रणयकोपसे खरी-खोटी सुनाने लगा। भक्तमालके रचयिता रीवाँनरेश रघुराजसिंहजी लिखते हैं।

भगि मन्दिर भीतर कृष्ण गये, तब गोविन्द भीतर जान लगो।
जब पण्डन मारि निकासि दियो, तब बाहर ही अति कोप जगो॥
महि ठोंकत डण्ड उचारत गारि दे, तू कढ़िहैं कबलों न भगो।
इत बैठ रहौंगो मैं तेरे लिये, नहिं दाँव दियो अहै पूरो ठगो॥

मन्दिर खुलते ही गोविन्द अन्दर घुस गया और डण्डेसे नाथजीकी मूर्त्तिको पीटकर बोला कि 'फिर कभी भागेगा?' पुजारियोंने 'हा! हा!' करके गोविन्दको पकड़ा और मार-पीटकर मन्दिरसे बाहर निकाल दिया, इससे उसका प्रेम-कोप और भी बढ़ा और वह कहने लगा, 'नाथजी! तैंने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है, दाँव न देकर भाग आया और अब मुझे अपने आदमियोंसे मरवाकर बाहर निकलवा दिया, अच्छा कल देखूँगा, जबतक तुझे इसका बदला न दूँगा, तबतक पानी भी नहीं पीऊँगा।' यों कहकर गोविन्द रूठकर चला गया और जाकर गोविन्दकुण्डपर बैठ गया। इधर मन्दिरमें भोग तैयार होनेपर पुजारीको प्रत्यादेश हुआ कि 'तुम लोगोंने मेरे जिस भक्तको मारकर बाहर निकाल दिया है वह जबतक नहीं आवेगा तबतक मेरे भोग नहीं लग सकता, उसके अंगपर जो मार पड़ी है वह सब मेरे लगी है।' पुजारीको क्या पता था कि भक्त और भक्तवत्सल अभिन्न होते हैं? खैर! पुजारीजी बड़े हैरान हुए, दौड़े, और खोजते-खोजते कुण्डपर गोविन्दको पाकर कहने लगे, 'भाई, चलो! नाथजीने तुम्हें बुलाया है, वे तुमसे हार मानते हैं और फिर तुम्हारे साथ खेलनेका वादा करते हैं।' ब्राह्मणके वचन सुनकर गोविन्दने कहा, 'जाता तो नहीं, वही मेरे पास आता और जब मैं उसे खूब पीटता, तभी वह सीधी राहपर आता, पर अब, जबकि उसने हार मान ली है, तब तो चलो, चलता हूँ।'

यों कहकर गोविन्द मन्दिरमें गया और विजय-गर्वसे हँसता हुआ बोला–'क्यों नाथ जी ! फिर कभी करोगे ऐसी चातुरी ? अच्छा हुआ जो तुमने हार मानकर मुझे बुला लिया, नहीं तो ऐसा करता जो जन्मभर याद रखते !' गोविन्दने यह बातें कह तो दीं परन्तु जब नाथजीका मुख उदास देखा तो उसके सरल-हृदयमें बड़ी वेदना हुई। वह बोला–'भाई ! तुमने अभी तक भोग क्यों नहीं लगाया। तुम्हारे मुखको उदास देखकर मेरे प्राण रोते हैं, भाई ! फिर कभी तुम्हें नहीं मारूँगा, तुम्हारी उदासी मुझसे सही नहीं जाती। मैं तुमसे अब नहीं रूठूँगा, तुम राजी हो जाओ और भोग लगाओ।'

मन्दिरके द्वार बन्द हो गये। नाथजी प्रत्यक्ष होकर बोले, 'भाई ! तुम भी तो भूखे हो। आओ, दोनों मिलकर खायँ।' नाथजीका प्रसन्न-मुख देखकर गोविन्दका मन-सरोज भी खिल उठा। दोनों हँसने लगे। आनन्दकी ध्वनिसे मन्दिर भर गया। गोविन्द, गोविन्दके हाथों बिक गये !

अकस्मात् द्वार खुला, गोविन्दने दिव्य-चक्षु प्राप्त किये और उसे सर्वत्र केवल नाथजी ही दीखने लगे !

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

भक्त धन्नाकी रोटियाँ भगवान् ले रहे हैं।

धन्ना जाट

गवान्‌की भक्ति सभी जातियोंके सभी मनुष्य कर सकते हैं, जिसकी चित्त-वृत्तिरूपी सरिताका प्रवाह भगवत्‌रूपी परमानन्दके महासागरकी ओर बहने लगे, वही भक्तिका अधिकारी है और उसीपर भक्त-भावन भगवान् प्रसन्न होते हैं।

भक्त धन्नाजी जाट थे, उन्होंने विद्याध्ययन नहीं किया था, शास्त्रोंका श्रवण भी वे नहीं कर सके थे परन्तु उनका सरल हृदय अनुरागसे भरा था। जगत्‌में ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसके हृदयमें प्रेमका बीज न हो, अभाव है उसपर सन्त-समागमरूपी सुधा-धाराके सिञ्चनका, इसी कारणसे उस बीजमें अंकुर उत्पन्न नहीं होता और यदि कहीं उत्पन्न होता है तो वह प्रतिकूल वातावरणके कारण, वृद्धिको प्राप्त होकर पल्लवित पुष्पित और फलित होकर जगत्‌को सुख पहुँचानेके बहुत पहले ही नष्ट हो जाता है। सत्संग-सुधासे सदा सिञ्चन होता रहे, भगवन्नामरूपी अनुकूल वायु हो और दृढ़ श्रद्धा विश्वासरूपी छायासे सुरक्षित हो तो एक दिन वह विशाल अमरवृक्ष बनकर अखिल विश्वको अपने सुगन्धसे और मधुर 'अमियमय' फलोंसे सुखी एवं परितृप्त कर सकता है।

भक्तवर धन्नाजीका प्रेमबीज बहुत छोटी अवस्थामें ही सन्त-सुधा-समागमसे जीवनीशक्ति प्राप्त कर चुका था। धन्नाजीके पिता खेतीका काम करते थे, पढ़े-लिखे न होनेपर भी उनका हृदय सरल और श्रद्धासम्पन्न था। वे सदा अपनी शक्तिके अनुसार सन्त भक्तों महात्माओंकी सेवा किया करते थे। उस समय न तो आज-कलकी भाँति अतिरिक्त बुद्धिवादके रोगका प्रचार था और न भण्ड तपस्वियोंका ही भारत-भूमिपर विशेष भार था। इससे सरलतापूर्वक साधुसेवा होनेमें कोई विशेष बाधा नहीं थी। धन्नाजीके पिताके यहाँ भी समय-समयपर अच्छे अच्छे सन्त-महात्मा आया करते थे।

धन्नाजीकी उम्र उस समय पाँच सालकी थी, एक दिन एक भगवद्भक्त साधु-ब्राह्मण उनके घर पधारे। ब्राह्मणने अपने हाथों कूएँसे जल निकालकर स्नान किया, तदनन्तर सन्ध्या-वन्दनादि नित्यक्रिया करनेके बाद झोलीमेंसे भगवान् श्रीशालिग्रामजीकी मूर्ति निकालकर उसे स्नान कराया और तुलसी, चन्दन, धूप, दीपादिसे उसकी पूजा कर उसके प्रसाद लगाकर स्वयं भोजन किया। धन्नाजी उस भक्तिनिष्ठ ब्राह्मणकी सब क्रियाएँ कौतुकसे देख रहे थे। बालकका सरल स्वभाव था, कुछ देर साधु-संग हुआ, धन्नाके मनमें भी इच्छा उत्पन्न हुई कि यदि मेरे पास भगवान्‌की मूर्ति हो तो मैं भी इसी तरह उसकी पूजा करूँ। बालक जैसी बात देखते हैं, वैसा ही वे करना भी चाहते हैं। धन्नाने भी

सरल हृदयकी स्वाभाविक ही मन प्रसन्न करनेवाली मीठी वाणीसे ब्राह्मणदेवके पास जाकर कहा—'पण्डितजी ! तुम्हारे पास जैसी भगवान्की मूर्ति है वैसी एक मूर्ति मुझे दो तो मैं भी तुम्हारी ही तरह पूजा करूँ' ब्राह्मणने पहले तो कुछ ध्यान नहीं दिया परन्तु बालक धन्नाने जब बारम्बार रोकर गिड़गिड़ाकर उसे बेचैन कर दिया तब बला टालनेके लिये एक काले पत्थरको उठाकर उसे दे दिया और कहा कि 'बेटा ! यह तुम्हारे भगवान् हैं, तुम इन्हींकी पूजा किया करो।' धन्नाको मानों यही गुरु-दीक्षा मिल गयी। इसी अल्पकालके सत्संग और सरलभक्तिके प्रतापसे बालक धन्नाजी प्रभुको अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न करनेमें समर्थ हुए। सत्संगका माहात्म्य भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं उद्धवजीसे कहते हैं—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथाऽवरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥
सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः॥
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राःस्त्रियोऽन्त्यजाः।
रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ !॥

बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः॥
सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे॥
ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः।
अव्रता तप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः॥
केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥
यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः
व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि॥

× × × ×

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रति चोदनाम्।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतो भयः॥

(श्रीमद्भागवत ११।१२)

हे उद्धव ! समस्त संगोंसे छुड़ानेवाले सत्सङ्गद्वारा जिस प्रकार मैं पूर्णरूपसे वश होता हूँ, उस प्रकार योग, सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तपस्या, त्याग, अग्निहोत्र, कुआँ-बावली खुदवाना और बाग लगवाना, दान दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, मन्त्र, तीर्थयात्रा, नियम

और यम आदि अन्यान्य सब साधनोंसे नहीं होता। भिन्न भिन्न युगोंमें दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, यक्ष, विद्याधर और मनुष्योंमें राजसी-तामसी प्रकृतिके वैश्य-शूद्र-स्त्री एवं अन्त्यज आदि जातियोंके अनेक मनुष्य, केवल सत्संगके प्रभावसे मेरे परमपदको प्राप्त हुए हैं। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयासुर, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गज, जटायु, तुलाधर वैश्य, व्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ और यज्ञपत्नियाँ, एवं ऐसे ही अन्यान्य अनेक जन, केवल सत्सङ्गके प्रभावसे अनायास ही मेरे दुर्लभपदको प्राप्त हुए हैं। देखो, गोपिका, यमलार्जुन, गौ, कालीनाग, एवं व्रजके अन्यान्य मृग, पक्षी और जड़, तृण, तरु, लता, गुल्म आदि सब केवल सत्सङ्गके प्रभावसे अनायास ही मुझे पाकर कृतार्थ हुए हैं। उक्त अज्ञानी और जड़ोंमेंसे किसीने वेद नहीं पढ़े, ऋषि-मुनियोंकी उपासना नहीं की, न कोई व्रत रक्खा और न कोई तप किया। हे उद्धव ! इसीसे कहते हैं कि योग, ज्ञान, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्या, स्वाध्याय आदिके द्वारा यत्न करनेपर भी मैं दुर्लभ हूँ, केवल भक्ति और सत्सङ्ग ही ऐसा साधन है जिससे मैं सुलभ होता हूँ। इसलिये हे मित्र उद्धव ! तुम श्रुति, स्मृति, प्रवृत्ति, निवृत्ति, श्रोतव्य और श्रुति—सब छोड़कर, सब शरीरधारियोंके आत्मारूप एकमात्र मुझको भक्तिपूर्वक अपना आश्रय बनाओ। मेरी शरण आनेसे तुम भयसे छूट जाओगे। अस्तु !

बालक धन्नाके आनन्दकी सीमा नहीं है, वह अपने भगवान्‌को कभी मस्तकपर रखते हैं, कभी छातीसे लगाये घूमते हैं। धन्नाकी पूजाका ठाठ बढ़ चला। धन्नाने तमाम खेलकूद छोड़ दिया, वह रात रहते ही उठकर स्नान करने लगे। तदनन्तर भगवान्‌को स्नान कराकर धन्नाजी चन्दनके बदलेमें नयी मिट्टी लाते, उससे भगवान्‌के तिलक करते। तुलसीदलकी जगह किसी भी वृक्षके हरे पत्ते भगवान्‌पर चढ़ा देते। बड़े प्रेमसे पूजा करके भक्तिभरे हृदयसे साष्टाङ्ग दण्डवत् करते। माता जब खानेको बाजरेकी रोटी देती तब धन्नाजी उस रोटीको भगवान्‌के आगे रखकर आँखें मूँद लेते। बीच बीचमें आँखें खोलकर यह देखते जाते कि अभी भगवान्‌ने भोग लगाना शुरू किया या नहीं, फिर थोड़ी देरके लिये आँखें बन्द कर लेते। इस तरह बैठे बैठे जब बहुत देर हो जाती, जब वह देखते कि भगवान्‌ने अब-तक रोटी नहीं खायी तब उन्हें बहुत दुःख होता और वह बारम्बार हाथ जोड़कर बालकोचित सरलस्वभाव और सरल वाणीसे अनेक प्रकार विनयानुरोध करते। इसपर भी जब वह देखते कि भगवान् किसी प्रकार भी भोग नहीं लगाते, तब वह निराश होकर यह समझते कि 'भगवान् मुझसे नाराज हैं इसीसे मेरी पूजा और भोग स्वीकार नहीं करते, परन्तु भगवान् भूखे रहें और मैं खाऊँ, यह कैसे हो सकता है?' यह विचारकर वह रोटी जंगलमें फैंक आते और भूखे रह जाते। दूसरे दिन फिर

इसी तरह करते ! इसप्रकार जब कई दिन अन्न जल बिना बीत गये, तब धन्नाजीका बल एकदम घट गया, शरीर सूख गया, चलने-फिरनेकी शक्ति जाती रही। शारीरिक क्लेशकी उन्हें इतनी परवा नहीं थी जितना उन्हें इस बातका दुःख था कि 'ठाकुरजी मेरी रोटी नहीं खाते।' इसी मार्मिक दुःखके कारण उनकी आँखोंसे सर्वदा आँसुओंकी धारा बहने लगी !

अब तो भगवान्‌का आसन हिला, सरल बालककी बहुत कठिन परीक्षा हो गयी, भक्तके दुःखसे द्रवित होकर भगवान् प्रकट हुए '*अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्*' सच्चिदानन्दघन जो योग-समाधि और ज्ञाननिष्ठासे भी दुर्लभ हैं वह परमब्रह्म नारायण धन्नाजीके प्रेमाकर्षणसे अपूर्व मनमोहनी मूर्ति धारणकर भक्तके सामने प्रकट हुए और उस '*प्रयतात्मनः*' प्रेमी भक्तकी '*भक्त्युप-हृतम्*' रोटी बड़े प्रेमसे भोग लगाने लगे। जब आधी रोटी खा चुके तब महाभाग धन्नाने उनका हाथ पकड़ लिया और कहने लगे कि 'ठाकुरजी ! इतने दिनोंतक तो आये नहीं, मुझे भूखों मारा, आज आये तब अकेले ही सारी रोटी लगे उड़ाने, तुम्हीं सब खा जाओगे तब क्या आज भी मैं भूखों मरूँगा, क्या मुझको जरा-सी भी नहीं दोगे ?

बालक-भक्तके सरल सुहावने वचनोंको सुनकर भगवान् मुस्कुराये और बची हुई रोटी उन्होंने धन्नाजीको दे दी। आज

इस धन्नाजीकी रोटीके अमृतसे बढ़कर स्वादका बखान शेष शारदा भी नहीं कर सकते ! भक्तवत्सल करुणानिधि कौतुकी भगवान् प्रतिदिन इसीप्रकार प्रकट होकर अपनी जन-मन-हरण रूप-माधुरी-से धन्नाजीका मन मोहने लगे । मनुष्य जबतक यह अनोखा रूप नहीं देखता तभीतक उसका मन वशमें रह सकता है, जिसे एक बार उस रूप-छटाकी झाँकी करनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया, उसीका मन सदाके लिये हाथसे जाता रहा, फिर उसे एकक्षण-के लिये भी उस सुन्दरकी छविको छोड़कर संसारकी कोई चीज नहीं सुहाती—कोई बात नहीं भाती । धन्नाजीकी भी यही दशा हुई, यदि वह एक क्षणभरके लिये उस मन-मोहनको आँखोंके सामने या हृदयमन्दिरमें न देख पाते तो उसी समय मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते, पलभरका भी भगवान्‌का वियोग उनके लिये असह्य हो उठता । इसीसे भगवान्‌को सदा-सर्वदा धन्नाजीके साथ या उनके हृदयधाममें रहना पड़ता । धन्नाने प्रेमरज्जुसे भगवान्‌को बाँध लिया, इसीसे वे भक्त-के परमधन भगवान् भी धन्नाको एक पलके लिये अलग नहीं छोड़ सकते थे । भगवान्‌का तो यह प्रण ही ठहरा ।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

जो सबमें मुझको देखता है और सबको मुझमें देखता है

उससे मैं कभी अदृश्य नहीं होता और मुझसे वह कभी अदृश्य नहीं होता।

धन्नाजी कुछ बड़े हो गये, इससे माताने उन्हें गौ दुहनेका काम सौंप दिया, कई गायें थीं, धन्नाजी दोनों समय गौ दुहा करते, एकदिन भगवान्‌ने प्रकट होकर उनसे कहा 'भाई! तुम्हें अकेले इतनी गायें दुहनेमें बड़ा कष्ट होता होगा। तुम्हारी गायें मैं दुह दिया करूँगा।'

सुर-मुनि-वन्दित सकल-चराचर-सेव्य अखिल विश्वस्वामी भगवान् अपने बालक-भक्तके साथ रहकर उसकी सेवा करने लगे। धन्य! धन्नाके सुखका क्या ठिकाना है? वह निरन्तर उस परम-सुखरूप परमात्माके साथ रहकर अप्रतिम, अचिन्त्य आनन्दका उपभोग कर रहे हैं!

कुछ दिन बाद धन्नाजीके गुरु वही ब्राह्मण-देवता धन्नाके घर फिर आये और उससे पूछने लगे कि 'क्यों भगवान्‌की पूजा करते हो या नहीं?' धन्नाने हँसकर कहा, 'महाराज! अच्छा भगवान् दे गये, कई दिनोंतक तो उसने मुझे न दर्शन दिया, न रोटी खाई, स्वयं भी भूखा रहा और मुझे भी भूखों मारा। अन्तमें एक दिन प्रकट होकर सारी रोटी चट करने लगा, बड़ी कठिनतासे मैंने हाथ पकड़कर आधी रोटी अपने लिये रखवायी। परन्तु महाराज! वह है बड़ा प्रेमी, सदा मेरे साथ रहता है। दोनों समय

मेरी गायें दुह देता है। मैं भी उसे छोड़ नहीं सकता, वह बड़ा ही प्यारा और सुन्दर है मेरे तो प्राण उसीमें बसते हैं।'

धन्नाजीकी बात सुनकर ब्राह्मणने आश्चर्यसे पूछा–'कहाँ है वह तुम्हारा भगवान्?' धन्नाने कहा–'क्या तुम्हें दीखता नहीं? यह देखो, मेरे पास ही तो खड़ा है।' ब्राह्मणको दर्शन नहीं हुए, उसने कहा,–'कहाँ धन्ना? मुझे तो नहीं दीखता।' धन्ना भगवान्से कहने लगे–'नाथ! यही ब्राह्मण तो मुझे तुम्हारी मूर्त्ति दे गया था, अब इसे दर्शन क्यों नहीं देते?' भगवान् बोले–'धन्ना! तुमने जन्म-जन्मान्तरके महान् पुण्य और शुद्ध-भक्तिसे मेरे दर्शन प्राप्त किये हैं, इस ब्राह्मणमें इतना तपोबल नहीं है। परन्तु इसने तुम्हारा गुरु बनकर बहुत बड़ा पुण्य सञ्चय कर लिया है, इसी पुण्यसे इसे मेरे दर्शन हो सकेंगे। तुम उसकी गोदमें जा बैठो, तुम्हारे पवित्र शरीरके स्पर्शसे इसे दिव्य नेत्र प्राप्त होंगे, जिससे यह मुझे देख सकेगा।' धन्नाने ऐसा ही किया। भक्त ब्राह्मण भक्तवत्सल भगवान्की अपूर्व छटा देखकर कृतकृत्य हो गया! तदनन्तर भगवान् अन्तर्द्धान हो गये।

धन्नाजीकी बाललीला समाप्त हुई, इसलिये भगवान्ने भी उनसे अब बालकोचित-सम्बन्ध नहीं रक्खा। भगवान्ने धन्नाजीको परम्परा-रक्षाके लिये नियमानुसार गुरुमन्त्र ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। धन्नाजी काशी गये और उन्होंने भक्तश्रेष्ठ आचार्य श्रीश्रीरामा-

नन्दजीसे दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर वह घर लौट आये। उन्हें भगवान्‌का तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया। अबसे धन्नाजी अपने परम गुप्त धनको हृदयकी गुप्त गम्भीर गुहामें ही देखने लगे।

एक समय धन्नाजीके पिताने उन्हें खेतमें गेहूँ बोनेके लिये बीज देकर भेजा। रास्तेमें कुछ सन्त मिल गये। सन्त भूखे थे, उन्होंने धन्नाजीसे भिक्षा माँगी। धन्नाजीको तो सर्वत्र अपने श्यामसुन्दर दीखते थे, अतः सन्तरूपमें भी उन्हें वही दिखलायी दिये। उनके लिये धन्नाके पास अदेय वस्तु ही क्या थी? उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे समस्त गेहूँ सन्तोंको दे दिये!

यह स्मरण रखना चाहिये कि जहाँ अभावग्रस्त गरीब खानेके लिये अन्न चाहते हैं वहाँ मानो साक्षात् भगवान् ही उनके रूपमें हमसे सेवा चाहता है, ऐसे मौकेपर चूकनेवालोंको पीछे बहुत पछताना पड़ता है। धन्नाजी-सरीखे भक्त भला क्यों चूकने लगे?

धन्नाजीने गेहूँ तो दे दिये परन्तु माता-पिताके भयसे यों ही घर लौटना उचित न समझकर वह खेत चले गये और यों ही जमीनपर हल चलाकर वह घर लौट आये। भक्तकल्पतरु-भगवान्‌ने धन्नाके बिना ही माँगे उसका गौरव बढ़ानेके लिये अपनी अघटन-घटना-पटीयसी मायासे खेतको सबके खेतोंसे बढ़कर हरा-

भरा कर दिया। धन्नाजीके खेतकी बहुत प्रशंसा होने लगी। यह सब सुनकर धन्नाजीने सोचा कि मैंने तो खेतमें एक भी बीज नहीं डाला था, फिर यह सुन्दर खेती कैसे हो गयी? खेत सूखा पड़ा होगा इससे लोग सम्भवतः दिल्लगीसे ऐसा कहते होंगे। परन्तु जब उन्होंने स्वयं खेत जाकर देखा और जब उसे लहलहाता और उमड़ता पाया, तब तो उनके आश्चर्यका पार नहीं रहा। प्रभुकी माया समझकर मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया। धन्नाजीके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ चला! नाभाजी महाराज लिखते हैं—

घर आये हरिदास तिन्हैं गोधूम खवाये।
तात मात डर थोथ खेत लंगूर बवाये॥
आसपास कृपिकार खेतकी करत बड़ाई।
भक्त भजेकी रीति प्रगट परतीतिज्ञु पाई॥
अचरज मानत जगतमें कहुँ निपज्यो कहु वै बयो।
धन्य धनाके भजनको बिनहि बीज अंकुर भयो॥